Website : www.sainsrijanpatal.com

साईं सृजन पटल

MSME Registration No.
UDYAM-UK-05-0103926

मासिक ई-पत्रिका

लेखन और सृजन के उन्नयन के लिए सदैव प्रतिबद्ध

वर्ष-3 | अंक-22 | मई - 2026 | पृष्ठ-36 | नि:शुल्क

कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

स्लीपी हॉलो, नैनीताल–263001, उत्तराखण्ड, भारत

Kumaun University, Nainital

Sleepy Hollow, Nainital-263001, Uttarakhand, India
(Accredited "B++" Grade by NAAC)

प्रो० (कर्नल) दीवान एस. रावत
एफ एन ए, एफ एन ए एससी, एफ आर एस सी, सी केम (लन्दन)
कुलपति
Prof. (Col.) Diwan S. Rawat
FNA, FNASc, FRSC, CChem (London)
Vice-Chancellor

संदेश

हर्ष का विषय है कि साईं सृजन पटल द्वारा मासिक पत्रिका के 22वें अंक (मई, 2026) का प्रकाशन किया जा रहा है। इस पत्रिका के माध्यम से छात्रों, शोधार्थियों, कलाकारों, लेखकों की प्रतिभा को आमजनमानस के सम्मुख लाया जा सकेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि साईं सृजन पटल द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका केवल लेखों और रचनाओं का संग्रह नहीं, बल्कि विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता, स्वतंत्र सोच, बौद्धिक परिपक्वता और अभिव्यक्ति की सशक्त धारा का प्रतीक होगी। पत्रिका के माध्यम से युवा मन को नई दिशा मिलेगी और उनकी प्रतिभा को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

मैं इस सराहनीय पहल के लिए साई सृजन पटल के मुख्य संपादक एवं सहयोगियों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

शुभकामनाओं के साथ,

(प्रो. दीवान एस. रावत)

संपादकीय

अगस्त 2024 में महज 10 पेज के न्यूज लैटर से शुरू होकर 'साई सृजन पटल' का 22 वां अंक 36 पृष्ठों की एक संपूर्ण पत्रिका के रूप में पाठकों के सम्मुख है। यह सब सहयोगी लेखकों, प्रबुद्ध पाठकों, आत्मीय सलाहकारों और समर्पित संपादकीय टीम की वजह से ही संभव हो पाया है। इस अंक में धार्मिक आस्था से जुड़े देवलगढ़ सिद्धपीठ,पाताल भुवनेश्वर,जाख देवता व गरुड़ भगवान मंदिरों पर लेख संकलित हैं। नवाचार की दिशा में एआई थीम रूम व सूर्यघर योजना पर भी प्रकाश डाला गया है। उत्तराखंडी सिनेमा से संबंधित निर्माता-निर्देशक रवि ममगाईं से साक्षात्कार और वनाग्नि पर बनी शार्ट फिल्म 'फायर वॉरियर्स' भी पत्रिका में लिपिबद्ध हैं। ज्ञानवर्धक लेखों की श्रृंखला में अंकुरित अनाज,कीड़ाजड़ी,सकिना के फूल व प्राकृतिक जल स्रोत नौला पर लेख भी पढ़ने को मिलेंगे। जौनसार-बावर की अनूठी परंपरा 'जोझोड़ा' व बिस्सू गनियात भी जानने योग्य हैं।

दून विश्वविद्यालय और दून पुस्तकालय में आयोजित चित्र प्रदर्शनियां भी अद्भुत हैं। एएनएम पूजा और भोजपत्र कलाकार निकिता का राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित होना राज्य के लिए गर्व की बात है। देहरादून के मिनी इको-टूरिज्म पार्क और आबादी क्षेत्र में हाथियों की घुसपैठ रोकने के लिए मधुमक्खीपालन की जानकारी भी रोचक है। इस अंक से 'करिअर गाईडेंस' श्रृंखला की शुरुआत 'आईएएस परीक्षा की तैयारी' से की गई है। कुमाऊँ विश्वविद्यालय के कुलपति जी ने अपने संदेश के जरिए हमारा उत्साहवर्धन किया है।

प्रो. (डॉ.) के. एल. तलवाड़

मुख्य सूचना आयुक्त उत्तराखण्ड श्रीमती राधा रतूड़ी को पत्रिकाएं भेंट करते हुए संपादक

साईं
सृजन पटल
मासिक ई-पत्रिका

संपादक/स्वामी/प्रकाशक
प्रो.के.एल.तलवाड़
(सेवानिवृत्त प्राचार्य)
मो. 9412142822
ई-मेलः sainsrijanpatal@gmail.com
वेबसाईट - sainsrijanpatal.com

उप संपादक
अंकित तिवारी
एम.ए., एल.एल.बी.
मो. 7678117638

सह संपादक
अमन तलवाड़
मो. 7300883189
द्वारा ईजी ग्राफिक्स,
दया पैलेस, हरिद्वार रोड,देहरादून (उत्तराखंड)
से मुद्रित करवाकर 'साईं कुटीर'
आर.के.पुरम, जोगीवाला, देहरादून
(उत्तराखंड) से प्रकाशित

सलाहकार मंडल
डॉ.एस.डी. जोशी, वरिष्ठ फिजिशियन
प्रो. जानकी पंवार (सेवानिवृत्त प्राचार्य)
प्रो. राजेश कुमार उभान (सेवानिवृत्त प्राचार्य)
डॉ० अनूप वीरेन्द्र कठैत (लेखक/अभिनेता)
डॉ. चन्द्रभूषण बिजल्वाण, साहित्यकार

आवरण पृष्ठ
डोल आश्रम (अल्मोड़ा) में मुख्यमंत्री द्वारा कन्या पूजन, जौनसार-बावर में बिस्सू मेले में सामूहिक नृत्य, एएनएम पूजा परमार राणा को राष्ट्रीय सम्मान, मियांवाला देहरादून में मिनी इको-टूरिज्म स्पॉट।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में तथ्यों संबंधी विचार लेखकों के निजी हैं, जिनसे प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

जाख देवता मंदिर

दहकते अंगारों पर नृत्य करते हैं पश्वा

देवभूमि उत्तराखंड का कण–कण देवी–देवताओं यक्षों, किन्नरों, गंधर्वों और अन्य दिव्य शक्तियों के रहस्यों से भरा हुआ है। हिमालय क्षेत्र होने के कारण यहां की मान्यताएं पौराणिक कथाओं और प्रकृति के अलौकिक रूपों से जुड़ी हैं। देवभूमि उत्तराखंड की संस्कृति और विरासत अपने आप में अद्भुत और अनूठी है। यहां के मठ–मंदिरों का पौराणिक धार्मिक महत्व इस विरासत को और भी समृद्ध बनाता है। यहां निर्जीव देव डोलियां सजीव होकर देवनृत्य करती हैं। देवभूमि में अलौकिक शक्तियां अलग–अलग रूप धारण कर दिव्य चमत्कारों से लोगों को श्रद्धा से सिर झुकाने को विवश कर देती हैं। रुद्रप्रयाग जनपद की केदारघाटी में आयोजित होने वाला जाख देवता मेला आस्था, रोमांच और पौराणिक परंपराओ का एक अद्भुत संगम है। यह मेला मुख्य रूप से गुप्तकाशी क्षेत्र स्थित देवशाला में चौदह गांवों के मध्य जाखधार में प्रतिवर्ष बैसाख माह आमतौर पर 2 गते बैसाख (15 अप्रैल के आसपास) में आयोजित किया जाता है। मेला आयोजित होने से तीन दिन पहले कोठेड़ा और नारायणकोटी के ग्रामीण नंगे पांव जगल में जाकर लकड़ियां एकत्र करते हैं और जाख मंदिर में एक विशाल अग्निकुण्ड तैयार करते हैं। इस अग्निकुण्ड में लगभग 100 कुतंल लकड़ियां समाहित की जाती हैं। अग्निकुण्ड में लकड़ियों का दस फीट ऊंचा ढ़ेर होता है। बैसाखी के दिन समस्त देवी–देवताओं की पूजा अर्चना के बाद रात्रि में अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। रात भर नारायणकोटि और कोठेड़ा ग्राम के ग्रामीण अग्निकुण्ड की देखभाल करते हैं। सम्पूर्ण रात में लकड़ियां जल कर वहां पर बहुत बड़े और भव्य अग्निकुण्ड में परिवर्तित हो जाती हैं। अगले दिन दोपहर में जाख देवता का पश्वा (जिस इंसान के ऊपर देवता अवतरित होते हैं) उन्हें स्थानीय भाषा में पश्वा कहा जाता है। मन्दाकिनी नदी में स्नान करने जाते हैं। जहां जाख देवता का पश्वा स्नान करने के बाद ढोल–दमाऊ की थाप के साथ नारायणकोटि से कोठेड़ा, देवशाल होते हुए जाख पहुंचते हैं और 'जय जाख देवता' के जयकारों के बीच जाख देवता जलते अंगारों पर नंगे पांव नाचते हैं और भक्तों को आशीर्वाद देते हैं। वहां उपस्थित लोग इस दृश्य को देखकर एकदम अचंभित हो जाते हैं कि देवता का पश्वा जलते अंगारों पर नंगे पांव कैसे नाचते हैं ! वह अग्निकुण्ड इतना विकराल होता है कि उसकी भंयकर अग्नि तपिश के कारण उसके आसपास भी खड़े नहीं हो सकते। देवता का पश्वा उस पर नाचते हैं, वह भी तीन बार इस अद्भुत दृश्य को देखकर लोग श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं। इस अग्निकुण्ड की राख को सभी भक्त जाख देवता के प्रसाद के रूप में सिर पर लगाते हैं और घर ले जाते हैं। इसे स्वास्थ्य और सुख–समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। इस मेले मे कोठेड़ा, देवशाल, नारायणकोटि, बणसू, सांकरी, देवर, नाला व रुद्रपुर आदि गांवो के लोग मेले को भव्य बनाने मे सहयोग करते हैं।

यह मेला आधुनिक युग में भी लोगों की अटूट आस्था का प्रमाण है। जहां दहकते अंगारों पर नंगे पैर चलना वैज्ञानिक तर्क से परे विश्वास का विषय है। यह मेला स्थानीय संस्कृति, लोक गीतों और पारंपरिक वाद्य यंत्रो को जीवंत रखता है। यह मेला न केवल धार्मिक बल्कि उत्तराखंड के सुदूर क्षेत्रों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है जो हर साल हजारों श्रद्धालुओं को अपनी ओर आकर्षित करता है।

प्रस्तुति : डॉ. रमेश चन्द्र भट्ट
विभागाध्यक्ष भूगोल,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कर्णप्रयाग

अन्न से अमृत तक

अंकुरित आहार का वैदिक और वैज्ञानिक रहस्य

भारतीय परंपरा में भोजन को केवल शरीर की आवश्यकता नहीं, बल्कि एक पवित्र प्रक्रिया माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद का यह वाक्य "अन्नं ब्रह्मेति व्यजाना" हमें यह स्मरण कराता है कि अन्न ही जीवन का आधार है। आज आधुनिक विज्ञान भी इस सत्य को स्वीकार कर रहा है कि भोजन केवल कैलोरी नहीं, बल्कि वह ऊर्जा है जो हमारे शरीर, मन और स्वास्थ्य को सीधे प्रभावित करती है।

इसी भाव को एक अत्यंत सुंदर दृष्टांत के माध्यम से समझाया गया है:–

''यथा हवने शुद्धद्रव्यं न समर्प्यते तदा वायुः प्रदूष्यते।
तथा जठराग्नों अशुद्धाहारस्य आहुतिः रोगान् जनयति।।''

डॉ. बृज मोहन शर्मा

अर्थात जिस प्रकार हवन में यदि शुद्ध सामग्री अर्पित न की जाए तो वायु प्रदूषित हो जाती है, उसी प्रकार यदि जठराग्नि में अशुद्ध आहार की आहुति दी जाए, तो वह शरीर में रोग उत्पन्न करता है। यह केवल एक आध्यात्मिक उपमा नहीं, बल्कि एक गहरा वैज्ञानिक सत्य भी है। हमारा शरीर भी एक प्रकार का "यज्ञ" है, जहाँ जठराग्नि निरंतर कार्य कर रही है। यदि हम उसमें शुद्ध, प्राकृतिक और जीवंत आहार जैसे अंकुरित अनाज–अर्पित करते हैं, तो शरीर स्वस्थ, संतुलित और ऊर्जावान रहता है। लेकिन यदि हम उसमें प्रोसेस्ड, रिफाइंड और कृत्रिम आहार डालते हैं, तो वही "अशुद्ध आहुति" धीरे–धीरे रोगों का कारण बन जाती है। आज के तेज–रफ्तार जीवन में हमारी रसोई का स्वरूप धीरे–धीरे, लगभग अनजाने में, लेकिन गहराई से बदल चुका है। जो स्थान कभी ताजगी, लय और सजगता के साथ भोजन तैयार करने का केंद्र हुआ करता था, वह अब गति और सुविधा से संचालित होने लगा है। पहले जिन अलमारियों में ताजा पिसा हुआ आटा, मौसमी अनाज और स्नेहपूर्वक तैयार की गई सामग्री रखी होती थी, वहाँ अब पैक्ड, रिफाइंड और तुरंत उपयोग के लिए तैयार खाद्य पदार्थों ने जगह बना ली है। ये खाद्य पदार्थ हमें सुविधा और समय की बचत का वादा करते हैं, और निस्संदेह वे इसे पूरा भी करते हैं। भोजन जल्दी बन जाता है, संग्रहण आसान हो जाता है और विकल्प भी अधिक दिखाई देते हैं। किन्तु इस सुविधा के पीछे एक सूक्ष्म समझौता छिपा हुआ है। भोजन को रिफाइन करने, संरक्षित करने और बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की प्रक्रिया में उसकी प्राकृतिक ऊर्जा और पोषण का एक बड़ा हिस्सा नष्ट हो जाता है। फाइबर कम हो जाता है, आवश्यक पोषक तत्व घट जाते हैं, और अंततः जो बचता है वह केवल कैलोरी से भरपूर लेकिन पोषण की दृष्टि से कमजोर आहार होता है। समय के साथ यह परिवर्तन केवल हमारी थाली तक सीमित नहीं रहता, बल्कि हमारे स्वास्थ्य में भी दिखाई देने लगता है थकान, पाचन संबंधी समस्याएँ, मेटाबोलिक असंतुलन और कृत्रिम सप्लीमेंट्स पर बढ़ती निर्भरता के रूप में।

प्राकृतिक और संतुलित भोजन से यह दूरी अब अनदेखी नहीं रह गई है। समाज के विभिन्न स्तरों पर घरों में, समुदायों में और वैज्ञानिक तथा स्वास्थ्य जगत में एक नई समझ विकसित हो रही है कि सुविधा ने भले ही जीवन को आसान बनाया हो, लेकिन उसने हमें पोषण की मूल जड़ों से दूर भी कर दिया है। और यहीं से एक शांत लेकिन सार्थक परिवर्तन की शुरुआत होती है। यह परिवर्तन शोरगुल वाला नहीं है, बल्कि सजग और विचारशील है। यह आधुनिकता का विरोध नहीं करता, बल्कि उसे परंपरा की बुद्धिमत्ता के साथ संतुलित करने का प्रयास करता है। इस वापसी के केंद्र में एक सरल किन्तु अत्यंत शक्तिशाली तत्व है। अंकुरित ऑर्गेनिक गेहूं का आटा, जिसे पारंपरिक घराट (पत्थर की चक्की) में पिसा जाता है। पहली दृष्टि में यह सामान्य प्रतीत हो सकता है, लेकिन वास्तव में यह साधारण नहीं है। यह उस प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है जो भोजन की प्राकृतिक बुद्धिमत्ता का सम्मान करती है। जब गेहूं के दाने अंकुरित होते हैं, तो वे एक जीवंत परिवर्तन से गुजरते हैं। निष्क्रियता से सक्रियता की ओर। इस प्रक्रिया में पोषक तत्व अधिक सुलभ हो जाते हैं, एंजाइम सक्रिय हो जाते हैं और अनाज एक ऐसे रूप में बदल

जाता है जिसे शरीर अधिक आसानी से पहचान, पचा और आत्मसात कर सकता है। इतना ही नहीं, इस अनाज को पीसने की प्रक्रिया भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। पारंपरिक घराट पद्धति धीमी और कोमल होती है, जो उन पोषक तत्वों को सुरक्षित रखती है जिन्हें आधुनिक मशीनें अक्सर नष्ट कर देती हैं। इसमें अत्यधिक गर्मी उत्पन्न नहीं होती, जिससे आटे के प्राकृतिक तेल, फाइबर और पोषण की संपूर्णता बनी रहती है। परिणामस्वरूप जो आटा प्राप्त होता है, वह केवल एक खाद्य पदार्थ नहीं, बल्कि एक अनुभव होता है। जिसमें प्राकृतिक सुगंध, सम्पूर्णता का स्पर्श और शुद्धता का विश्वास समाहित होता है। इसे केवल "आटा" कहना इसके महत्व को कम आंकना होगा। यह वास्तव में एक सेतु है। जो अतीत की बुद्धिमत्ता को वर्तमान की आवश्यकताओं से जोड़ता है। यह हमें याद दिलाता है कि पोषण केवल पेट भरने का साधन नहीं, बल्कि जीवन को संपूर्णता से पोषित करने का माध्यम है। यह हमें धीमा होने, सजग होने और यह समझने के लिए प्रेरित करता है कि हमारी रसोई में किए गए छोटे–छोटे चुनाव ही हमारे स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं।

इसीलिए, अंकुरित ऑर्गेनिक गेहूं का आटा केवल एक सामग्री नहीं, बल्कि जीवंत आहार (Living Nourishment) है। इसमें वृद्धि की ऊर्जा, प्रकृति का संतुलन और आधुनिक जीवनशैली से खोई हुई पोषण शक्ति को पुनः स्थापित करने की क्षमता निहित है। इसे अपनाना केवल भोजन में परिवर्तन नहीं है, बल्कि भोजन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन है अचेत उपभोग से सजग पोषण की ओर, सुविधा–आधारित आदतों से mindful living की ओर।

अन्न : केवल भोजन नहीं, दिव्य पोषण

भारतीय ज्ञान परंपरा में अन्न को सदैव अत्यंत आदर के साथ देखा गया है। तैत्तिरीय उपनिषद का यह वाक्य–

"अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्" (अन्न ही ब्रह्म है) केवल एक आध्यात्मिक कथन नहीं, बल्कि जीवन का गहन सत्य है। इस दृष्टिकोण में अन्न को केवल शरीर को चलाने वाला साधन नहीं, बल्कि जीवन का आधार माना गया है। प्रत्येक अन्न कण में सृष्टि की ऊर्जा समाहित है, जो शरीर के साथ–साथ मन और चेतना को भी पोषित करता है।

यह दृष्टि हमें सजग बनाती है। जब भोजन को पवित्र माना जाता है, तो उसका चयन, उसकी तैयारी और उसका सेवन तीनों एक जागरूक प्रक्रिया बन जाते हैं। मात्रा से अधिक गुणवत्ता पर ध्यान दिया जाता है, जल्दबाजी की जगह कृतज्ञता आती है और उपभोग की जगह संतुलन स्थापित होता है। आज का विज्ञान भी इसी सत्य की पुष्टि करता है। अब भोजन को केवल कैलोरी, प्रोटीन या वसा के रूप में नहीं देखा जाता, बल्कि उसे एक जटिल जैव–रासायनिक सूचना प्रणाली माना जाता है। भोजन शरीर की कोशिकाओं से संवाद करता है, मेटाबोलिज्म को नियंत्रित करता है, रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और मानसिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार, प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। भोजन निष्क्रिय नहीं, बल्कि सक्रिय और प्रभावशाली है।

अंकुरण : प्रकृति का पोषण–वर्धन

अन्न की इस जीवंतता को और बढ़ाने वाली प्रक्रिया है अंकुरण। यह एक सरल लेकिन अत्यंत प्रभावशाली प्रक्रिया है। जब गेहूं के दानों को भिगोकर अंकुरित होने दिया जाता है, तो वे एक नए जीवन की शुरुआत करते हैं। इस दौरान दाने के भीतर कई जैविक परिवर्तन होते हैं। एंजाइम सक्रिय हो जाते हैं और जटिल पोषक तत्व जैसे स्टार्च और प्रोटीन सरल रूपों में टूटने लगते हैं। इससे भोजन पचाने में शरीर को कम मेहनत करनी पड़ती है। यही कारण है कि विशेषज्ञ अंकुरण को "प्राकृतिक पूर्व–पाचन प्रक्रिया" कहते हैं। इसके साथ ही, पोषण में भी वृद्धि होती है। विटामिन बी–समूह की मात्रा बढ़ती है, विटामिन C उत्पन्न होने लगता है, और आयरन, जिंक तथा मैग्नीशियम जैसे खनिज अधिक आसानी से शरीर द्वारा अवशोषित किए जा सकते हैं। अंकुरण के दौरान फाइटिक एसिड जैसे एंटी–न्यूट्रिएंट्स कम हो जाते हैं, जिससे खनिजों का अवशोषण बेहतर होता है। आधुनिक शोध यह भी दर्शाते हैं कि अंकुरण से पोषक तत्वों का अवशोषण 20–30 प्रतिशत तक बढ़ सकता है। इसका अर्थ है कि शरीर को न केवल अधिक पोषण मिलता है, बल्कि वह उसे अधिक प्रभावी रूप से उपयोग भी कर पाता है। इसके अलावा, अंकुरित अनाज में एक सूक्ष्म लेकिन महत्वपूर्ण गुण जुड़ जाता है जीवंतता। यह अब केवल निष्क्रिय भोजन नहीं रहता, बल्कि ऊर्जा से भरपूर, सक्रिय और जीवनदायी बन जाता है।

यथा मूर्तौ प्रतिष्ठाप्य प्राणान् देवस्य पूज्यते ।
तथैवान्नेऽङ्कुरेणैव प्राणप्रतिष्ठा विधीयते ॥

साधारण और अंकुरित आटे का पोषण तुलना (प्रति 100 ग्राम लगभग)

पोषक तत्व	सामान्य गेहूं का आटा	अंकुरित गेहूं का आटा	सुधार
ऊर्जा	340 Kcal	320–330 Kcal	बेहतर मेटाबोलिज्म
प्रोटीन	11–12 g	13–15 g	अधिक अवशोषण
फाइबर	10–12 g	12–15 g	बेहतर पाचन
कार्बोहाइड्रेट	70–72 g	60–65 g	बेहतर शुगर नियंत्रण
विटामिन B	मध्यम	अधिक	वृद्धि
विटामिन C	नगण्य	उपस्थित	नया निर्माण
आयरन	3–4 mg	4–5 mg	बेहतर अवशोषण
मैग्नीशियम	130 mg	150 mg	वृद्धि
फाइटिक एसिड	अधिक	कम	बेहतर खनिज अवशोषण
एंजाइम	न्यून	सक्रिय	पाचन में सहायक

जीवनं पोषणं चास्य बलं आरोग्यमेव च ।
अंकुरितं हि तदन्नं नित्यं रोगनिवारणम् ॥

डॉ. बृज मोहन शर्मा

जिस प्रकार मंदिर में देवता की मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करके उसे जीवंत और पूजनीय बनाया जाता है, उसी प्रकार जब अन्न को अंकुरित किया जाता है, तो उसमें भी प्राणों का संचार हो जाता है। ऐसा अंकुरित अन्न जीवनदायक, पोषण देने वाला, बलवर्धक और आरोग्य प्रदान करने वाला होता है। यह नियमित सेवन करने पर शरीर को निरोग रखने में सहायक बनता है। अंततः प्रश्न केवल इतना नहीं है कि हम क्या खा रहे हैं, बल्कि यह है कि हम अपने जीवन को किस दिशा में ले जा रहे हैं।

हर दाना जो हम चुनते हैं, वह हमारे शरीर, हमारे मन और हमारी आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य का निर्माण करता है। अंकुरित अन्न हमें प्रकृति के उस मौन सत्य की याद दिलाता है कि जीवन सादगी में फलता–फूलता है, कृत्रिमता में नहीं। जब हम जीवंत, शुद्ध और संतुलित आहार को अपनाते हैं, तो हम केवल अपने शरीर को नहीं, बल्कि अपनी चेतना को भी पोषित करते हैं। शायद समय आ गया है कि हम सुविधा से थोड़ा ऊपर उठकर संवेदनशीलता को चुनें, और अपने भोजन को फिर से उसका सम्मान लौटाएँ। क्योंकि सच तो यह है। अन्न केवल जीवन नहीं देता, वह जीवन को अर्थ भी देता है।

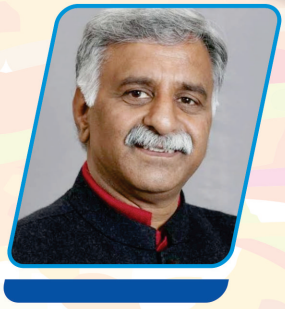

प्रस्तुति - डॉ. बृज मोहन शर्मा,
राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त
विज्ञान संप्रेषक एवं नवोन्मेषक

'सूर्यघर' योजना में उत्तराखंड पर्वतीय राज्यों में प्रथम स्थान पर

पीएम 'सूर्यघर' योजना के तहत पहाड़ी राज्यों में शीर्ष स्थान प्राप्त करना यह साबित करता है कि उतराखंड हरित ऊर्जा क्रांति का नेतृत्व कर रहा है। यह केवल उपलब्धि नहीं, बल्कि ऊर्जा आत्मनिर्भरता की दिशा में एक बड़ी छलांग है। साथ ही, सौर नीति 2023 के तहत निर्धारित 250 मेगावाट का लक्ष्य भी समय से लगभग डेढ़ साल पहले ही हासिल कर लिया गया है।

प्रस्तुति : अमन तलवाड़, सह संपादक

उत्तराखंड राज्य ने पीएम 'सूर्यघर' योजना में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। एक से छह मई के बीच राज्यभर में 1101 सोलर रूफटॉप प्लांट लगाए गए, जो सभी पहाड़ी राज्यों में सबसे अधिक संख्या है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य राज्य के घरेलू उपभोक्ताओं को 300 यूनिट तक मुफ्त बिजली प्रदान करना और रूफटॉप सोलर सिस्टम के माध्यम से ऊर्जा आत्मनिर्भरता हासिल करना है। उत्तराखंड ने संशोधित लक्ष्य का लगभग 91 प्रतिशत काम पूरा कर लिया है और राज्य के 23,000 से अधिक परिवारों को इस योजना से जोड़ा गया है। इस योजना के नोडल अधिकारी मुख्य अभियंता आशीष अरोड़ा के अनुसार

नवाचार

लोक भवन में 'एआई थीम रूम' व 'एआई ऑन व्हील्स' का शुभारंभ

राज्यपाल लेफ्टिनेंट जनरल (से.नि) गुरमीत सिंह ने 14 मई को लोक भवन देहरादून में 'एआई थीम रूम' का उद्घाटन और 'एआई ऑन व्हील्स' वाहन का फ्लैग ऑफ किया। समस्त हितधारकों को शुभकामनाएं देते हुए उन्होंने कहा कि यह पहल डिजिटल अंतराल को समाप्त कर समाज के अंतिम व्यक्ति तक तकनीक की पहुंच सुनिश्चित करेगी। तकनीकी क्रांति की यह लौ पूरे प्रदेश में नवाचार और तकनीकी जागरूकता का प्रकाश फैलायेगी। यह पहल देवभूमि उत्तराखंड को **ज्ञानभूमि से टेक भूमि** में बदलने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम साबित होगी। तकनीकी संप्रभुता विकसित भारत की सबसे बड़ी शक्ति बनेगी। उन्होंने युवाओं से अपील की कि वे उपयोग करने तक सीमित ही न रहें, बल्कि तकनीक के निर्माण में भी अपना योगदान दें। इस अवसर पर रोबोट का लाइव डेमो भी प्रस्तुत किया गया।

प्रस्तुति
प्रो. (डॉ.) के. एल.तलवाड़

दून का सांस लेता नया कोना
मियांवाला का मिनी इको- टूरिज्म स्पॉट

तेजी से फैलते शहरों के बीच अक्सर सबसे पहले जो खोता है, वह है प्रकृति का संतुलन। लेकिन देहरादून के मियांवाला क्षेत्र से आई यह पहल एक सकारात्मक संकेत देती है। विकास और पर्यावरण संरक्षण साथ–साथ चल सकते हैं। वर्षों से उपेक्षित एक प्राकृतिक तालाब का कायाकल्प कर उसे मिनी इको–टूरिज्म स्पॉट में बदलना केवल सौंदर्यीकरण नहीं, बल्कि सोच में आए बदलाव का प्रमाण है। मसूरी–देहरादून विकास प्राधिकरण (MDDA) द्वारा लगभग 3.30 करोड़ रुपये की लागत से विकसित यह परियोजना इस बात का उदाहरण है कि यदि इच्छाशक्ति हो तो पुराने जल स्रोतों को बचाते हुए उन्हें आधुनिक जरूरतों के अनुरूप ढाला जा सकता है। मियांवाला पंचायत घर के समीप स्थित यह स्थल अब केवल एक पार्क नहीं, बल्कि शहर की नई पहचान बनकर उभर रहा है। यह संदेश स्पष्ट है कि अब विकास की परिभाषा केवल कंक्रीट के ढांचे खड़े करना नहीं, बल्कि प्राकृतिक धरोहरों को बचाते हुए उन्हें जन–जीवन से जोड़ना है।

जल संरक्षण की दिशा में सार्थक कदम

मियांवाला परियोजना का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें पुराने जलाशय को समाप्त नहीं किया गया, बल्कि उसे केंद्र में रखते हुए पूरा ढांचा विकसित किया गया। यह दृष्टिकोण आज के समय की सबसे बड़ी जरूरत जल संरक्षण को सीधे संबोधित करता है। ऐसे प्रयास भूजल स्तर को बनाए रखने में सहायक होते हैं और शहर को दीर्घकालिक पर्यावरणीय संतुलन प्रदान करते हैं। यदि इसी मॉडल को शहर के अन्य हिस्सों में भी अपनाया जाए, तो यह न केवल स्थानीय पर्यटन को बढ़ावा देगा बल्कि जल संकट जैसी गंभीर समस्याओं के समाधान की दिशा में भी ठोस कदम होगा।

सिर्फ पार्क नहीं, जीवनशैली का नया केंद्र

मियांवाला का यह पार्क अपने स्वरूप में एक सामान्य पार्क से कहीं आगे निकल जाता है। यहां योग डेक, पारंपरिक उत्तराखंडी स्थापत्य शैली का मुख्य द्वार, आकर्षक गजीबो, सुव्यवस्थित वॉकिंग ट्रैक, कैटीन, स्वच्छ शौचालय और हरियाली से भरपूर खुले क्षेत्र इसे एक सम्पूर्ण पारिवारिक गंतव्य बनाते हैं। शहर की भागदौड़ से दूर,

लेकिन दूरी में बेहद नजदीक यह स्थान परिवारों के लिए वीकेंड पर सुकून भरा समय बिताने का आदर्श विकल्प बन सकता है। सुबह की ताजी हवा में योग और शाम की सैर के लिए यह स्थल एक स्वस्थ जीवनशैली को भी प्रोत्साहित करेगा।

सांस्कृतिक पहचान और आधुनिकता का संगम

पार्क का मुख्य द्वार पारंपरिक उत्तराखंडी स्थापत्य शैली में बनाया गया है, जो स्थानीय संस्कृति और आधुनिक विकास के बीच एक सुंदर संतुलन स्थापित करता है। यह केवल एक संरचना नहीं, बल्कि अपनी जड़ों से जुड़े रहने का संदेश भी देता है।

भविष्य की दिशा : और भी ऐसे प्रयासों की जरूरत

मियांवाला परियोजना एक मॉडल के रूप में सामने आई है, जिसे अन्य क्षेत्रों में भी दोहराया जा सकता है। शहर के कई पुराने तालाब और जल स्रोत आज भी उपेक्षा का शिकार हैं। यदि उन्हें इसी प्रकार संरक्षित और विकसित किया जाए, तो देहरादून एक हरित और सतत विकास का आदर्श उदाहरण बन सकता है।

योग और सामुदायिक जुड़ाव का केंद्र

पार्क में योग कक्षाओं की शुरुआत इस स्थान को केवल घूमने–फिरने तक सीमित नहीं रखती, बल्कि इसे एक सक्रिय सामुदायिक केंद्र में बदल देती है। इससे लोगों को स्वस्थ रहने, तनाव कम करने और आपसी जुड़ाव बढ़ाने का अवसर मिलेगा। मियांवाला का यह मिनी इको–टूरिज्म स्पॉट विकास की उस नई सोच का प्रतीक है, जहां प्रकृति और प्रगति एक–दूसरे के पूरक बनते हैं। यह पहल बताती है कि यदि सही दिशा में प्रयास किए जाएं, तो शहर केवल विस्तार ही नहीं, बल्कि संतुलन भी पा सकता है। देहरादून के लिए यह एक नई शुरुआत है। एक ऐसी शुरुआत, जो आने वाले समय में कई और हरित कहानियों को जन्म दे सकती है।

प्रस्तुति : अंकित तिवारी
उप संपादक

प्राकृतिक जल संरक्षण की ऐतिहासिक धरोहर : नौला

एक बार फिर से 'साईं सृजन पटल' पत्रिका के माध्यम से आपको कुमाऊँ की तरफ ले चलती हूँ। खान पान, रीति– रिवाज, त्यौहार और पहनावे से हट कर कुमाऊँ का शिल्प तथा स्थापत्य भी अपनी विरासत की कहानी कहता है। इस क्षेत्र के स्थापत्य कला का एक बेजोड़ एवं महत्त्वपूर्ण उदाहरण है – 'नौला'। नौला पानी का एक जलकुंड होता है। यदि साधारण शब्दों में कहा जाए तो नौला पत्थरों से घिरा हुआ तथा ढका हुआ एक छोटा जलाशय होता है, जिसमें प्राकृतिक स्रोतों या भूमिगत रिसाव से आने वाला पानी एकत्रित होता रहता है। यह पहाड़ी ढलानों पर उस स्थान पर पाया जाता है जहां जमीन के भीतर से लगातार पानी रिसता रहता है।

विशेषज्ञों से प्राप्त जानकारी के अनुसार नौला वास्तव में कुमाऊं क्षेत्र में सदियों से चली आ रही जल संरक्षण की एक अद्भुत पारंपरिक प्रणाली है जिसका निर्माण, क्षेत्र में जल संकट की परिस्थितियों के समाधान हेतु किया गया। नौले में पानी को एकत्र करने व सुरक्षित रखने के लिए इसके चारों ओर पत्थर की चिनाई से कमरानुमा आकार बनाया जाता है ताकि पानी स्वच्छ रहे, साथ ही नीचे जाने के लिए सीढ़ियां बनाई जाती हैं, जिससे लोग पानी तक आसानी से पहुंच सकें। पहाड़ों में ढलान के कारण हर घर तक पानी पहुंचना आसान नहीं होता था इसीलिए ये नौले जल संकट की स्थिति में वरदान सिद्ध होते थे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिमालयी क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ये एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

स्थानीय समाज में नौला मात्र जल संरक्षण का एक साधन ही नहीं है अपितु सामाजिक व धार्मिक परंपराओं का केंद्र भी है। कई नौलों में पत्थर के स्तंभ, नक्काशीदार दीवारें व छज्जे तथा देवी–देवताओं की आकृतियां इस बात का संकेत देती हैं कि जल को देव स्वरूप एक पवित्र तत्व माना गया है। मुख्यतः नौलों का निर्माण मंदिरों के आसपास व पवित्र स्थानों पर किया गया ,जो इसकी धार्मिक मान्यता का प्रमाण है। विवाह की पश्चात् पूजन तथा मृत्यु के बाद के कर्मकांड भी नौलों में किये जाते हैं। दोनों ही कार्यों के लिए अलग अलग नौले निर्धारित होते हैं। इसीलिए इनकी साफ सफाई, मरम्मत और संरक्षण की सामूहिक जिम्मेदारी क्षेत्र के लोगों द्वारा निभाई जाती है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि नौले केवल प्राकतिक स्रोत ही नहीं अपितु सामुदायिक सहभागिता का प्रतीक भी हैं। शायद इसी धार्मिक कारण से ही ये नौले आज भी अपने

अस्तित्व को जीवित रखे हुए हैं। अल्मोड़ा , पिथौरागढ़ , चंपावत , द्वाराहाट तथा बागेश्वर के आसपास के क्षेत्रों में विशेषतः नौले अधिक देखने को मिलते हैं। कई पुराने नौले दिखने में इतने सुंदर होते हैं कि छोटे मंदिरों की तरह प्रतीत होते हैं। कई स्थानों पर आज भी पाइपलाइन व्यवस्था कमजोर होने अथवा पानी ना आने पर ये नौले ही पेयजल के स्रोत बने हुए हैं। शुद्वता की दृष्टि से इनका पानी शत–प्रतिशत शुद्ध होता है जो की स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभकारी होता है। मुझे अपने बचपन का समय याद है , जब घर में नलों में पानी ना आने पर , नदी दूर होने से ,पानी के लिए पूर्णतया नौलों पर ही निर्भर रहा जाता था।

अनेक वर्षों पहले किए गए नौलों का निर्माण इस बात का प्रमाण हैं कि तत्कालीन समाज के लोगों के पास वैज्ञानिक समझ , स्थानीय भूगोल का ज्ञान तथा जल संरक्षण की गहरी समझ होने के साथ साथ पर्यावरण के प्रति जागरूकता भी थी, जिसने इनके शिल्प को इतना मजबूत बनाया है के ये आज भी जीवन्त है। आज जब सम्पूर्ण विश्व, जलवायु परिवर्तन के कारण जल संकट से जूझ रहा है तो ये नौले जैसी पारंपरिक प्रणाली मात्र सांस्कृतिक विरासत भर नहीं रह जातीं, बल्कि भविष्य के जल–सुरक्षा के समाधान के रूप में भी सामने आती है।

परन्तु किए गए शोध कार्यों से पता चलता है कि इनके जल स्तर में भी लगातार गिरावट आ रही है और कई नौले आज संकट का सामना कर रहे हैं, जिसका प्रमुख कारण जंगलों का कटान है व भूजल में कमी है। इसके अतिरिक्त एक अन्य गंभीर चुनौती है– पारंपरिक ज्ञान का क्षरण।

वर्षों पूर्व नौलों का निर्माण और रख–रखाव केवल स्थापत्य कौशल ही नहीं था, बल्कि स्थानीय भौगोलिक की समझ पर आधारित था। वर्तमान में, नई पीढ़ी में इस ज्ञान का हस्तांतरण लगातार कम हो रहा है, जिससे इनके पुनर्जीवन का कार्य कठिन होता जा रहा है। यद्यपि अनेक स्थानीय संगठन व समुदाय, सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएं , शोध कार्य तथा नई तकनीकी के प्रयोग द्वारा इनको संरक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है लेकिन हर व्यक्ति की ये नैतिक जिम्मेदारी है कि अपनी इस धरोहर के संरक्षण के प्रति जागरूक हों।

प्रस्तुति : डॉ. विनीता चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर,
डी.डब्लू.टी.कॉलेज, देहरादून

देवलगढ़ राजराजेश्वरी सिद्धपीठ
आस्था, इतिहास और संस्कृति का संगम

उत्तराखण्ड की पावन धरती, जिसे देवभूमि के नाम से जाना जाता है, अपने भीतर अनेकों धार्मिक और ऐतिहासिक धरोहरों को संजोए हुए है। इन्हीं में से एक है पौड़ी गढ़वाल जिले में स्थित देवलगढ़ का राजराजेश्वरी सिद्धपीठ, जो न केवल धार्मिक आस्था का केंद्र है, बल्कि इतिहास और संस्कृति का भी महत्वपूर्ण प्रतीक है। देवलगढ़, पौड़ी जिले का एक प्राचीन और ऐतिहासिक स्थल है, जो कभी गढ़वाल राज्य की राजधानी रहा है। देवलगढ़ राजराजेश्वरी सिद्धपीठ श्रीनगर गढ़वाल से 8 से 9 किलोमीटर आगे राष्ट्रीय राजमार्ग 58 (बद्रीनाथ मार्ग) पर चमधार नामक स्थान से लगभग 9 किलोमीटर की दूरी पर खिरसू –बुगाणी मोटर मार्ग पर स्थित है। यह स्थान अपनी प्राकृतिक सुंदरता के साथ–साथ गढ़वाल के पंवार वंश की ऐतिहासिक राजधानी स्थल तथा आध्यात्मिक वातावरण के लिए प्रसिद्ध है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

देवलगढ़ का इतिहास अत्यंत गौरवशाली रहा है। यह स्थान गढ़वाल के प्राचीन शासकों की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध रहा है। गढ़वाल में पंवार वंश के प्रतापी राजा अजयपाल ने 1512 ईस्वी में अपनी राजधानी चमोली में स्थित चांदपुरगढ़ से देवलगढ़ स्थानांतरित की थी। 5 वर्ष तक यहीं से राज्य की बागडोर संभाली और 1517 में पुनः श्रीनगर अपनी राजधानी स्थानांतरित की। इस स्थल पर पूर्व मध्यकाल तथा मध्यकाल में निर्मित 4 सुरंग भी महत्वपूर्ण हैं जो पुरातत्व विभाग (उत्तराखण्ड संस्कृति विभाग) द्वारा संरक्षित हैं। ऐसा माना जाता है कि तत्कालीन राजाओं द्वारा सामरिक दृष्टि से इन सुरंगों का निर्माण किया गया होगा। इन सुरंगों का प्रयोग शत्रु से बचकर सुचारु पेयजल व्यवस्था हेतु किया जाता रहा होगा। माना जाता है कि यहाँ अनेक मंदिरों का निर्माण मध्यकालीन गढ़वाल शासकों द्वारा कराया गया, जिनमें राजराजेश्वरी मंदिर प्रमुख है। यह राजराजेश्वरी मंदिर तीन मंजिला रूप में बना हुआ है। मंदिर के मुख्य पुजारी और प्रसिद्ध पुस्तक "देवलगढ़ का इतिहास– अजयपाल से हेमवती नंदन बहुगुणा तक" के लेखक कुंजिका प्रसाद उनियाल बताते हैं कि राजा अजयपाल ने ऊपरी मंजिल पर राजराजेश्वरी देवी स्थापित की, बीच की मंजिल पर वे अपने परिवार के साथ रहते थे जबकि सबसे निचली मंजिल पर राजा के सिपहसालार रहते थे। एक किंवदंती यह भी है कि हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा से आए किसी देवल नामक राजा ने देवलगढ़ को बसाया था। मध्यकाल में देवलगढ़ क्षेत्र न केवल राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का भी प्रमुख केंद्र रहा है। आज भी देवलगढ़ के आसपास प्राचीन मंदिरों और स्थापत्य के अवशेष इस समृद्ध इतिहास की गवाही देते हैं।

धार्मिक महत्त्व और आस्था

देवलगढ़ का राजराजेश्वरी मंदिर एक प्रसिद्ध सिद्धपीठ माना जाता है। यहाँ विराजमान माँ राजराजेश्वरी को शक्ति का स्वरूप माना जाता है और भक्तों की गहरी आस्था इस स्थान से जुड़ी हुई है। स्थानीय मान्यता है कि यहाँ सच्चे मन से की गई प्रार्थना अवश्य फलित होती है। नवरात्रि के अवसर पर यहाँ विशेष पूजा–अर्चना और मेले का आयोजन होता है, जिसमें दूर–दूर से श्रद्धालु आते हैं। कुंजिका प्रसाद उनियाल बताते हैं कि यह पौराणिक मंदिर कुल देवी राजराजेश्वरी का है और राजराजेश्वरी को तंत्र शास्त्रों में षोडसी भी कहा जाता है इसकी कल्पना 16 साल की कन्या से की गई है इसके 16 प्रकार के श्रृंगार तथा 16 प्रकार के भोग हैं। राजा अजयपाल जो कि राजा कनकपाल की 37वीं पीढ़ी के राजा थे, द्वारा यह राज् राजेश्वरी का श्रीयंत्र देवलगढ़ में स्थापित किया गया है। कहा जाता है कि जब आदि शंकराचार्य हिन्दू धर्म के प्रचार –प्रसार के लिए भारत भ्रमण पर निकले तो हिमाचल प्रदेश के भद्रेश्वरी मंदिर के पुजारी ने उन्हें यह श्रीयंत्र दिया शंकराचार्य इस प्रकार की शक्ति पर विश्वास नहीं करते थे लेकिन जब वे बद्रीनाथ के लिए श्रीनगर के पास आए तो उन्हें अतिसार का सामना करना पड़ा। वे शारीरिक कमजोरी के कारण नदी किनारे धूप में बैठ कर उठ

नहीं पाए नदी सामने थी लेकिन पानी तक नहीं पी पाए। शंकराचार्य जी ने देखा कि एक 16 साल की कन्या सिर पर पानी की गगरी लेकर जा रही है तो उन्होंने उससे गुहार लगाई कि मुझे पानी पिला दो, तो कन्या ने कहा कि नदी से पी लो, तो उन्होंने जवाब दिया कि मेरे शरीर में नदी तक जाने की शक्ति नहीं है, तब कन्या ने कहा कि जब तुम शक्ति को मानते ही नहीं हो तो शक्ति आएगी कैसे ? तब उन्हें विश्वास हुआ कि मैं किसी शक्ति स्थल पर हूं। इसके पश्चात शंकराचार्य ने उस श्रीयंत्र को स्नान कराकर साथ रखा और आगे की यात्रा की।

उस समय देव दर्शन के साथ–साथ राजदर्शन भी हुआ करता था जब शंकराचार्य बद्रीनाथ पहुंचे तो भगवान बद्रीनाथ के दर्शन करने के बाद जब राजदर्शन के लिए राजा कनकपाल से मिले तो भेंट स्वरूप यह श्रीयंत्र उन्होंने राजा को सौंप दिया। राजा कनकपाल ने इस श्रीयंत्र को चांदपुरगढ़ (चमोली) में स्थापित कर दिया। कालांतर में राजा अजयपाल ने इस श्रीयंत्र को देवलगढ़ में स्थापित कर दिया तब से यह मूल रूप में देवलगढ़ में ही स्थापित है। राज दरबार से संबंधित जितनी भी जातियां उस समय उत्तराखण्ड में थी वे राजराजेश्वरी को अपनी कुल देवी मानते हैं। यह मंदिर न केवल धार्मिक आस्था का केंद्र है, बल्कि लोगों के जीवन में आध्यात्मिक ऊर्जा और विश्वास का स्रोत भी है।

स्थापत्य कला और संरचना

राजराजेश्वरी मंदिर की वास्तुकला पारंपरिक पहाड़ी शैली में निर्मित है। पत्थरों से बना यह मंदिर अपनी सादगी और भव्यता दोनों के लिए जाना जाता है। मंदिर परिसर में शांति और पवित्रता का अद्भुत वातावरण अनुभव किया जा सकता है। यहाँ की स्थापत्य कला गढ़वाल की सांस्कृतिक विरासत को दर्शाती है, जिसमें स्थानीय कारीगरों की कुशलता स्पष्ट झलकती है।

प्राकृतिक सौंदर्य

देवलगढ़ का वातावरण अत्यंत मनमोहक और शांतिपूर्ण है। चारों ओर फैली हरियाली, ऊँचे–ऊँचे पहाड़ और स्वच्छ हवा इस स्थान को और भी विशेष बनाते हैं। यहाँ आने वाले श्रद्धालु न केवल आध्यात्मिक शांति का अनुभव करते हैं, बल्कि प्रकृति के सानिध्य में एक अलग ही सुकून भी महसूस करते हैं। यह स्थान धार्मिक पर्यटन के साथ–साथ प्राकृतिक पर्यटन के लिए भी उपयुक्त है।

सांस्कृतिक महत्त्व

देवलगढ़ केवल एक धार्मिक स्थल ही नहीं, बल्कि गढ़वाल की समृद्ध संस्कृति का भी प्रतीक है। यहाँ के लोकगीत, मेले और पारंपरिक आयोजन इस क्षेत्र की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाते हैं। नवरात्रि और अन्य धार्मिक अवसरों पर यहाँ की सांस्कृतिक झलक विशेष रूप से देखने को मिलती है, जो

स्थानीय परंपराओं और रीति–रिवाजों को जीवित रखती है। मुख्य पुजारी श्री उनियाल बताते हैं कि उत्तराखण्ड में अधिकांश लोग अलग–अलग स्थानों से आकर बसे हैं जब वे अपने साथ अपने देवी–देवताओं को भी लेकर आते हैं तो वही देवी–देवता कुलदेवी या कुलदेवता कहलाते हैं यह राज राजेश्वरी भी कुलदेवी है इसलिए इस सांस्कृतिक धरोहर को संजोये रखने के लिए हमें अपनी भावी पीढ़ी को भी यह बताना है कि वे अपनी जड़ों को पहचाने तथा इन सिद्धपीठों पर पहने जाने वाले परिधानों का भी ध्यान रखें।

पर्यटन की संभावनाएँ

देवलगढ़ राज राजेश्वरी सिद्धपीठ धार्मिक पर्यटन का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन सकता है। यहाँ तक सड़क मार्ग से आसानी से पहुँचा जा सकता है और निकटवर्ती नगर श्रीनगर इस क्षेत्र का प्रमुख संपर्क बिंदु है। यदि यहाँ पर्यटन सुविधाओं का और विकास किया जाए, तो यह स्थान राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर

पर भी प्रसिद्ध हो सकता है। देवलगढ़ का राजराजेश्वरी सिद्धपीठ आस्था, इतिहास और संस्कृति का अद्भुत संगम है। यह स्थान न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि अपनी ऐतिहासिक विरासत और प्राकृतिक सुंदरता के कारण भी विशेष स्थान रखता है।

आज आवश्यकता है कि इस धरोहर को संरक्षित और विकसित किया जाए, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इसकी महत्ता को समझ सकें और इसका लाभ उठा सकें। देवलगढ़ वास्तव में एक ऐसा स्थान है, जहाँ आस्था, इतिहास और प्रकृति एक साथ मिलकर एक अद्वितीय अनुभव प्रदान करते हैं।

प्रस्तुति : कीर्तिराम डंगवाल
असिस्टेंट प्रोफेसर,राजनीति विज्ञान
डॉ. शिवानन्द नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,कर्णप्रयाग

श्रद्धा

लमगड़ा (अल्मोड़ा) का डोल आश्रम

मुख्यमंत्री ने पूजी 1100 कन्याएं

एक मई को अल्मोड़ा जनपद के डोल आश्रम के पीठम स्थापना समारोह में मुख्यमंत्री ने 1100 कन्याओं का पूजन किया। पीठम स्थापना महोत्सव में महिलाओं की ओर से डोल आश्रम से लेकर लमगड़ा तक लगभग पांच किलोमीटर लंबी भव्य कलश यात्रा निकाली गई। कलश यात्रा में महिलाएं पारंपरिक परिधानों में सजधज कर सम्मिलित हुई और पूरे मार्ग में भक्ति और उत्साह का वातावरण रहा।

मुख्यमंत्री ने आश्रम परिसर में स्थापित श्रीयंत्र एवं संचालित आध्यात्मिक गतिविधियों का अवलोकन किया। उन्होंने कहा कि यहां स्थापित दुनिया के सबसे बड़े श्रीयंत्र को देखकर एक विशेष आध्यात्मिक अनुभूति होती है। बाबा कल्याण दास की साधना और तपस्या के कारण यह स्थान आज पूरे विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान बना चुका है और आध्यात्मिक चेतना के प्रसार का एक प्रमुख केंद्र बन गया है। राज्य सरकार आध्यात्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयासरत है। उल्लेखनीय है कि डोल आश्रम, जिसे श्री कल्याणिका हिमालय देवस्थानम के नाम से भी जाना जाता है,अल्मोड़ा से लगभग 40 किलोमीटर की दूरी पर एक ऊंची पहाड़ी पर हरे–भरे जंगलों के बीच स्थित है। इस आश्रम का निर्माण वर्ष 1991 में योग और ध्यान के लिए किया गया है। यह आश्रम आध्यात्मिक व साधना का केंद्र है,जहां देश–विदेश से हजारों श्रद्धालु पहुंचते हैं।

प्रस्तुति - प्रो. (डॉ.) के. एल.तलवाड़

शार्ट फिल्म

उत्तराखंड आधारित 'फायर वॉरियर्स' वेव्स फिल्म फेस्टिवल के लिए चयनित

नई हिंदी लघु फिल्म 'फायर वॉरियर्स' को आधिकारिक रूप से वेव्स इंटरनेशनल शॉर्ट फिल्म फेस्टिवल गोवा के तीसरे संस्करण में प्रदर्शित होने के लिए चुना गया है। 'A Celebration of Cinematic Waves' थीम पर आधारित यह फेस्टिवल 7 से 10 मई तक पणजी स्थित एंटरटेनमेंट सोसाइटी ऑफ गोवा (ESG) में आयोजित हुआ। यह केवल दूर बैठकर बनाई गई फिल्म नहीं है, बल्कि यह उत्तराखंड की अपनी कहानी है। फायर वॉरियर्स के केंद्र में हैं निर्देशक महेश भट्ट, जो देहरादून, उत्तराखंड से हैं। यह फिल्म IFS अधिकारी टी.आर. बिजू लाल की सच्ची डायरी पर आधारित है, जिन्होंने दो दशकों तक उत्तराखंड के जंगलों की रक्षा की। यह दुनिया की पहली ऐसी फिल्म मानी जा रही है जो सीधे एक कार्यरत वन अधिकारी के वास्तविक अनुभवों से प्रेरित है।

रामगढ़, महेश खान, टैगोर टॉप और कुमाऊं क्षेत्र के बिनसर की खूबसूरत वादियों में फिल्माई गई यह 29 मिनट की फिल्म साहस, त्याग और जल, जंगल तथा जमीन की रक्षा के संघर्ष की सच्ची कहानियां दिखाती है। इसकी कहानी अल्मोड़ा जिले के सफल 'शीतलाखेत मॉडल' से प्रेरित है, जहां ग्रामीण वन पंचायतों का उत्सव मनाकर सामूहिक रूप से जंगलों की रक्षा करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह फिल्म उन पांच फ्रंटलाइन नायकों को भावभीनी श्रद्धांजलि देती है जिन्होंने 2024 में उत्तराखंड के बिनसर वन्यजीव अभयारण्य में लगी भीषण जंगल की आग के दौरान अपने प्राणों की आहुति दी।

यह परियोजना स्टार फार्च्यून मूवीज और रियलिटी फिल्म्स के सहयोग से बनाई गई है। इसमें सिनेमैटोग्राफर मनोज सती, एडिटर आयुष्मान, और म्यूजिक डायरेक्टर मन चौहान जैसे प्रतिभाशाली कलाकार शामिल हैं। इसके

कार्यकारी निर्माता संजय मैथानी हैं, जबकि ऋतुराज ने क्रिएटिव प्रोड्यूसर की भूमिका निभाई है। निर्माण टीम ने कहा कि 'हमें बेहद गर्व है कि फायर वॉरियर्स को वेव्स इंटरनेशनल शॉर्ट फिल्म फेस्टिवल में मान्यता मिली। यह फिल्म उन अनसुने नायकों को समर्पित है जो जंगलों और वन्यजीवों की रक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डालते हैं। गोवा जैसे प्रतिष्ठित मंच पर इसका प्रदर्शन उत्तराखंड की त्याग और पर्यावरण संरक्षण की महत्वपूर्ण कहानी को वैश्विक दर्शकों तक पहुंचाने का अवसर देगा।' वेव्स इंटरनेशनल शॉर्ट फिल्म फेस्टिवल 3.0 का आयोजन गोवा सरकार के सूचना एवं प्रचार विभाग द्वारा किया जा रहा है और इसे गोवा टूरिज्म डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन तथा ब्रांड पार्टनर सोनी सहित कई संस्थाओं का सहयोग प्राप्त है।

प्रस्तुति - प्रो. (डॉ.) के. एल.तलवाड़

128 साल पुराना ठाणा डांडा की बिस्सू गनियात

1967 ई. में संवैधानिक जनजातीय पहचान जौनसार–बावर को प्राप्त हुई, किंतु जनजातीय मूल स्वरूप भौगोलिक एवं सामाजिक आधार अतीत से रहा। रीति–रिवाज एवं मेले पर्वों में यहां के लोक की लोक आत्मा बसती है। बिस्सू पर्व की धार्मिक एवं सामाजिक समरसता की नींव की अपनी यहां गहराई है। दुनिया के पर्यटन मानचित्र पर आज इस स्थान की पहचान 'चिरमिरी टॉप' की है, किंतु अतीत की सांस्कृतिक इतिहास में ठाणा डांडा की जीवंतता है। निकटवर्ती ठाणा गाँव की छानियां यहां कभी हुआ करती थी। ठाणा डांडा बिस्सू गनियात डिग्री कॉलेज चकराता के बिल्कुल निकट है। मुझे 17 अप्रैल, 2026 को इसमें शामिल होने का अवसर मिला, फलतः जैसा मैंने देखा एवं समझा उसे प्राथमिक स्रोतों के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा हूँ। ब्रिटिश राज में अंग्रेजों ने चकराता को 'पहाड़ों का राजा' कहा, कारण यहाँ की प्राकृतिक सौंदर्यता एवं अनुकूलित जलवायु। ठाणा डांडा से भी औपनिवेशिक इतिहास के किस्से जुड़ें है। लोक में मौखिक रूप में सुना जाता है कि अंग्रेज यहाँ हेलीपैड बनाना चाहते थे, किंतु स्थानीयता ने तब प्रतिरोध किया। यह भी लोक मान्यता है कि इस शानदार सपाट थात में वे निर्माण कार्य करना चाहते थे, तब उन्होंने यहां तक घोड़ा मार्ग भी बना दिया था, जो आज भी मौजूद है ,किंतु इसके नीचे झील अथवा पानी की संभावना होने के कारण उन्होंने अपने प्रोजेक्ट में बदलाव किया। यद्यपि लिखित संदर्भ स्रोत प्राप्त नहीं है, किंतु प्राथमिक स्रोतों से संदर्भित यह आधार है। आइए अब जानते है कि क्यों बिस्सू पर्व की जनजातीय समाज में इतनी ऐतिहासिकता आधुनिक परिदृश्य में भी है। मूलतः यह पर्व कृषि की आर्थिक खुशहाली से जुड़ा है। पशुपालन एवं कृषि न केवल यहां बल्कि दुनिया की सभी आदिवासी क्षेत्रों की रीढ रही है, जिस कारण जनजातीय लोक मानस के तीज–त्यौहार भी प्रकृति के निकटता में हैं। सक्रांति से जौनसार–बावर की 39 खतों के गाँवों में घर की लिपाई–पुताई की जाती है, यहाँ तक कि

ऋतुओं के अनुरूप प्रवासी छानियों की भी, साथ ही यहां के आँगन चौरी के मंदिर में कुल देव महासू की पूजा अर्चना बुरांस के फूल एवं पारम्परिक व्यजंनों से की जाती है।

बिस्सू पर्व जौनसार बावर में बैसाखी के दिन अर्थात 13 अप्रैल से 17 अप्रैल, चार –पाँच दिनों तक अलग–अलग खतों में अपनी सुविधानुसार लगता है। गांवों की भौगोलिक सपाट थात पर बिस्सू गनियात (मेला) लगता है. गनियात शब्द की प्राकृतिक ऐतिहासिकता का संदर्भ लोक में इस रूप में मिलता है। गानी का फूल एवं कोंपलें बीनने पूर्व समय में गाँव की बालिकाएं/युवतिया ऊँचे स्थानों पर जाया करती थी।यह औषधीय पौधा भी है। इन्हें बीनते–बीनते वे ऊँचें थातों (चोंटियों में) अलग–अलग गाँवों की बालिकाओं का आत्मीय भावनाओं के मेल–मिलाप में एक मेला जैसा जमवाड़ा लग जाता था। इसी संकल्पना से फिर गनियात लोक में प्रचलित हुआ। स्थानीयता में इन स्थानों पर गनियात (मेले) लगते हैं, चौली थात (अब रामताल गार्डन), चुरानी का बिस्सू, लुहन डांडा, जाखणी का बिस्सू, नगाय, चौलिक, खुरूड़ी, मागटी का डांडा, मकाबागी, लाखामण्डल मड़े के थौड़ें और ठाणे डांडे की गनियात जिसका ऐतिहासिक संदर्भ ठाणा गाँव के बीरेन्द्र जोशी एवं मेला समिति के उपाध्यक्ष सालिकराम जोशी ने सहिया में लगने वाले मौण मेले से बताया है। इस गनियात में उपलगाँव खत एवं वनगाँव खत के गाँवों के सामूहिकवाद की एकता के अतीत के जश्न को मनाने का केन्द्र बिंदु रहा है, जो अब जौनसार–बावर की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में ख्याति प्राप्त स्थल हो गया है। वनगाँव खत (खत से अभिप्राय अन्यत्र क्षेत्रों में इन्हें पट्टियां कहा जाता है) में रावना, पाटी, बुरांस्वा, मयरावना, शिर्बा, मैपाऊटा, टुंगरौली, घणता, कोटुवा, कोल्हा, बिसाऊ आदि गाँवों की मोईल्ला (समूह) अपने पारम्परिक गाजे–बाजे, ढोल–दमाऊं, रणसिंगें आदि वाद्य यंत्रों के साथ ठाणा डांडा गनियात में पहुंचते हैं, तो उपलगाँव खत के ठाणा, टुंगरा, रिखाड़, बिरमों, कोरबा आदि गाँवों के लोग भव्यता से उनका आत्मीय स्वागत सत्कार करते हैं। अपनी पारम्परिक परिधानों में पुरुष एवं महिलाओं की टोलियों का सौन्दर्य एवं मर्यादित शालीनता में जौनसार–बावर की सांस्कृतिक पहचान अति मनभावन लगती है।

इसके बाद बिस्सू गनियात में पारम्परिक गीत तांदी, रांसू, झैंता एवं जंगू गीतों से जो आकर्षण बनता है, वह मौलिक संस्कृति की मूल आत्मा की साझी धरोहरीय विरासत लगती है। लोगों के हाथों में तलवार, डांगरी घेसड़ी (विशेष प्रकार का लकड़ी का डंडा,) से लोकनृत्य किया जाता है।बिस्सू गनियातों में जितनी तांदी, हारूलें, राँसू, जंगा बाजी (युद्ध/शौर्य गीत) लगते हैं, वे सब जनजातीय जीवनशैली से जुड़ें मौखिक परम्परा की लोक आत्मा आधारित होते हैं, जिनमें हर्ष, उल्लास, श्रृंगार के साथ भौगोलिक एवं सामाजिक जटिलताओं के साथ दुःख, वेदना की भी पुकार होती।

इन गीतों में प्रकृति संरक्षण एवं कृषि प्रधानता की भावना लोक कलाकारों की सृजनता मन से उकेरी रहती है। ठोड़ें नृत्य (तीरंदाजी/धनुष बाण युद्ध) जो गनियात का एक प्रमुख केंद्र बिंदु है। यह पराक्रम एवं कौशल साहस का प्रतीक है। विभिन्न खतों से युवा एवं वयस्क पूरे उत्साह के साथ पैरों में मोटा ऊनी पाइजामा पहनकर आते हैं। ठोड़ा

गीत एवं वाद्य यंत्रों पर ठोड़ा गीत के ताल ढोली बजाते हैं, रणसिंगा जो शौर्य एवं युद्ध की गूंज का प्रतीक है, गूंजता है और युवा ठोड़ा नृत्य करते हुए धनुष पर बाण चढ़ाते और गौरव के साथ अपने खानदान का परिचय देते हैं, फिर जोर से धनुष पर बाण खींचतें और दूसरे साथी जो पास में अपने दोनों पैरों को हिलाते रहते हैं पर जोर से तीर मारते हैं। निशाना पैरों पर ही लगाना होता है। ठीक फिर दूसरा साथी अपने धनुष बाण लेता और निशाना उसके पैरों पर लगाता है। इस बीच ठोऊड़ा गीत एवं ढोल की थाप के साथ वह साठी (कौरव पक्ष) या पासी (पांडव पक्ष) का यह कहता रहता है।

कभी–कभी जोरदार तीर पैरों पर लगता है तो लोक में हंसी मजाक के रूप में कहा जाता है कि सावन के महिने रोपाई करते समय यदि पैरों में दर्द होता है तो अपनी जौनसारी बोली में कहते हैं –ये लगा भौ ठोऊड़ा सुला विस्वा सुला विस्वा। मूलतः इस युद्ध कौशल एवं पराक्रम के भाव भले आज मनोरंजन के हो किंतु मुझे ऐसा लगता है कि यह क्षेत्र बाहरी आक्रांताओं की निकटता में रहा है फलतः जनजातीय समाज अपनी सुरक्षा आदि के अनुरूप अपनी पारम्परिक नींव तैयार करता था। निष्कर्षत : ऐतिहासिक संदर्भ तब की जटिलताओं एवं भौगोलिक विषमताओं का जो भी रहा हो किंतु जौनसारी समाज ने तीज त्योहार एवं पर्वों के माध्यम से अपनी जीवंतता भौतिकवादी परिवर्तन के दौर में रखी हुई है। ठाणा डांडें की लगभग डेढ़ किमी मीटर लम्बी चौड़ी थात में बाँज– बुरांस एवं देवदार के बीच में सपाट थात में कई सौ गाड़ियां एवं हजारों लोगों की भीड़ जो हिमाचल, बावर, रवांई, जौनसार जौनपुर एवं गढ़वाल आदि क्षेत्रों की उमंगता उत्साह आज के पलायनवादी स्वरूप में एक बड़ी आस एवं उम्मीद जगाती है। जौनसारी संस्कृति में सांस्कृतिक जीवंतता वाद्य यंत्रों की विरासत से है।

गनियात समाप्ति पर वनगाँव के ढोलियों/बाजगियों को बड़ें मान सम्मान से विदाई दी जा रही थी। इस भावनात्मक दृश्य ने मुझे आकर्षित किया। बिना इनके यहां का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की जीवंतता सम्भव नहीं है। यमुना घाटी की जौनसारी लोक संस्कृति में लोक नृत्यों में सामूहिकवाद एवं शानदार सांस्कृतिक अनुशासन दिखता है, यही इस मौलिक संस्कृति की मूल विशेषता है, जो अन्य संस्कृतियों हेतु प्रेरणादायी भी है।

प्रस्तुतिः डॉ.पवन कुमार कुदवान,
असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास,
राजकीय महाविद्यालय चकराता,
देहरादून।

भगवान शिव को समर्पित
पाताल भुवनेश्वर मंदिर

■ डॉ० हरीश चन्द्र रतूड़ी

उत्तराखंड के कुमाऊं क्षेत्र में स्थित पाताल भुवनेश्वर मंदिर एक ऐसा तीर्थ स्थल है जहां धर्म, पौराणिक कथाएं और प्राकृतिक चमत्कार एक साथ दिखाई देते हैं। यह मंदिर गंगोलीहाट कस्बे के पास पिथौरागढ़ जनपद के बेरीनाग तहसील के भुवनेश्वर गांव में स्थित है। पाताल भुवनेश्वर गुफा का खुलने का समय ग्रीष्मकाल में अप्रैल से सितंबर तक सुबह 9:30 बजे से सायं 5:30 बजे तक तथा शीतकाल में अक्टूबर से मार्च तक सुबह 9:30 बजे से सायं 4:30 बजे तक रहता है। मंदिर के पुजारी दीवान सिंह भंडारी के अनुसार पाताल भुवनेश्वर गुफा के दर्शन करने से पूर्व श्रद्धालुओं को वृद्ध महादेव मंदिर के दर्शन करने होते हैं जो भुवनेश्वर गांव एवं पाताल भुवनेश्वर गुफा से पूर्व लगभग 300 मीटर की दूरी पर है। गुफा में महादेव के बाल रूप के दर्शन होते हैं। श्रद्धालुओं को गुफा के दर्शन करवाने के लिए मंदिर समिति की ओर से निर्धारित शुल्क पर गाइड की व्यवस्था की जाती है। यह स्थल समुद्र तल से लगभग 1350 मीटर की ऊंचाई पर स्थित यह स्थान प्राकृतिक सुंदरता से भरपूर है। यहां तक पहुंचने के लिए सड़क मार्ग से गंगोलीहाट तक आकर लगभग 500 मीटर पैदल चलना पड़ता है। इस गुफा की खोज त्रेता युग में सूर्यवंशी राजा रितुपर्ण ने की एवं आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने यहां पूजा प्रारंभ की, मंदिर समिति के गाइड मनोहर सिंह गुरहु के अनुसार पांडव अपने वनवास के समय यहां पर आए थे। गुफा में एक छोटी संकीर्ण सुरंग से प्रवेश होता है, जहां लोहे की जंजीरों के सहारे धीरे–धीरे नीचे उतरना पड़ता है।अंदर पहुंचने पर चूना पत्थर से बनी अद्भुत आकृतियां दिखाई देती हैं। गुफा का प्रवेश द्वार नीचे की ओर 30 मीटर है और गुफा में प्रवेश के पश्चात उसकी लंबाई लगभग 100 मीटर एवं चौड़ाई 2 से 5 मीटर है। यह मंदिर भगवान शिव को समर्पित है और इसे पाताल लोक का प्रवेश द्वार भी माना जाता है।

यहां दर्शन करने से मोक्ष की प्राप्ति एवं पापों से मुक्ति मिलने की मान्यता है। गुफा के भीतर प्राकृतिक रूप से बने शिवलिंग आकृति के दर्शन होते हैं, जिसे स्वयंभू माना जाता है। गुफा की छत पर फैली हुई संरचना शेषनाग के फन

....शेष पृष्ठ : 31 पर

राष्ट्रीय फ्लोरेंस नाइटिंगेल पुरस्कार से सम्मानित हुई पूजा परमार

जनपद उत्तरकाशी के विकास खंड नौगांव के सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र की एएनएम पूजा परमार राणा को 12 मई को 'अंतरराष्ट्रीय नर्स दिवस' के अवसर पर दिल्ली में आयोजित समारोह में राष्ट्रपति द्रोपदी मुर्मू ने उन्हें वर्ष 2026 का 'राष्ट्रीय फ्लोरेंस नाइटिंगेल पुरस्कार' प्रदान किया। यह सम्मान पूजा के वर्षों के समर्पण, साहस और सेवा का राष्ट्रीय मूल्यांकन है। पूजा ने अपनी 15 वर्षों की नौकरी में पूरे सेवाभाव से बच्चों और गर्भवतियों की देखभाल की। टीकाकरण के साथ ही सुरक्षित प्रसव के लिए बेहतर काम किया।

पहाड़ के दूरस्थ क्षेत्रों व ऊंची चढ़ाई चढ़कर हजारों लोगों के लिए प्राण प्रहरी बनीं। कोरोनाकाल में जनवरी 2021 में जब वैक्सीनेशन शुरू हुआ, तब पूजा गर्भवती थीं। इसके बावजूद उन्होंने टीकाकरण की कमान संभाली और टीका लगा कर लोगों को सुरक्षित किया। उनके पति आनंद राणा आयुर्वेद फार्मासिस्ट हैं और आरोग्य मंदिर कुंआ बड़कोट में कार्यरत हैं, जिनका पूरा सहयोग पूजा को मिलता है।

प्रस्तुति- अरविंद थपलियाल,
वरिष्ठ पत्रकार, नौगांव, उत्तरकाशी

प्रतिभा

भोजपत्र कलाकार निकिता रावत 'अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस' से सम्मानित

बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ में आयोजित अंबेडकर जयंती एवं विश्वविद्यालय स्थापना दिवस समारोह (11–14 अप्रैल 2026) के अवसर पर समाज और उद्यमिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाली भोजपत्र कलाकार निकिता रावत को भोजपत्र संरक्षण और पुनर्जीवन के लिए 'अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस' से सम्मानित किया गया। यह सम्मान उन्हें नवाचार और उद्यमिता के रूप में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए प्रदान किया गया। निकिता रावत और वैज्ञानिक डॉ. धर्मेंद्र कुमार जनजातीय शिल्प इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के संस्थापक हैं , पारंपरिक कला एवं जनजातीय शिल्प को आधुनिक मंच प्रदान करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।

समारोह में विश्वविद्यालय प्रशासन ने उनके कार्यों की सराहना करते हुए कहा कि इस प्रकार के प्रयास न केवल स्थानीय कलाकारों को आत्मनिर्भर बनाते हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति और परंपरा को वैश्विक पहचान भी दिलाते हैं। समापन अवसर पर विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों ने कहा कि ऐसे सम्मान न केवल व्यक्तियों को प्रेरित करते हैं, बल्कि युवाओं को भी समाज के प्रति सकारात्मक योगदान देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

प्रस्तुति-
प्रो. जानकी पंवार,
सेवानिवृत्त प्राचार्य, सदस्य सलाहकार मंडल
साईं सृजन पटल

कीड़ा जड़ी उत्तराखंड की दुर्लभ औषधीय संपदा

कीड़ा जड़ी *(Ophiocordyceps sinensis)*, जिसे यार्सागुम्बा या "हिमालयन गोल्ड" के नाम से भी जाना जाता है, विश्व के सबसे दुर्लभ और मूल्यवान जैविक संसाधनों में से एक है। यह एक विशेष प्रकार का परजीवी कवक है, जो कीड़ों के शरीर पर विकसित होता है। मुख्य रूप से यह भारत, नेपाल, भूटान और तिब्बत के हिमालयी अल्पाइन क्षेत्रों में 3,500 से 5,000 मीटर की ऊँचाई पर पाया जाता है। दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी खोज और संग्रहण अत्यंत कठिन कार्य है, जिसके कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में इसकी कीमत सोने से भी अधिक मानी जाती है।

कीड़ा जड़ी की खोज लगभग 1500 वर्ष पूर्व तिब्बत में हुई थी। कहा जाता है कि चरवाहों ने देखा कि इसे खाने के बाद उनके याक और बकरियाँ अधिक शक्तिशाली और ऊर्जावान हो जाती थीं। इसका पहला लिखित उल्लेख 15वीं शताब्दी में तिब्बती चिकित्सक न्याम्यी दोर्जे द्वारा लिखित ग्रंथ "एन ओशन ऑफ एफ्रोडिसिएकल क्वालिटीज" में मिलता है, जहाँ इसे शक्तिवर्धक और यौन टॉनिक के रूप में वर्णित किया गया था। बाद में चीन के मिंग और किंग राजवंशों के शाही चिकित्सकों ने भी इसका उपयोग औषधि के रूप में किया। बौद्ध मान्यताओं में जीवित कीड़ों को मारना पाप माना जाता था, इसलिए सदियों तक इसका अत्यधिक दोहन नहीं हुआ और यह हिमालयी क्षेत्रों में सुरक्षित बनी रही। इसका जीवन चक्र अत्यंत रोचक और अनोखा है। सर्दियों में इसके बीजाणु जमीन के भीतर रहने वाले घोस्ट मॉथ के कैटरपिलर को संक्रमित कर देते हैं। धीरे–धीरे यह कवक कीड़े के शरीर को भीतर से खाकर उसे ममी में बदल देता है, जबकि बाहरी संरचना सुरक्षित रहती है। वसंत ऋतु में बर्फ पिघलने पर कीड़े के सिर से एक भूरे रंग की डंडी जैसी फंगस बाहर निकलती है। मार्च से जून के बीच स्थानीय लोग इसे सावधानीपूर्वक जमीन से निकालते हैं। बाजार में इसका मूल्य तभी माना जाता है जब मृत कैटरपिलर और फंगस दोनों जुड़े हुए हों। कीड़ा जड़ी औषधीय गुणों से भरपूर मानी जाती है। इसमें प्रोटीन, पॉलीसेकेराइड, स्टेरोल्स, न्यूक्लियोसाइड्स, फैटी एसिड और विभिन्न विटामिन पाए जाते हैं। इसके सक्रिय तत्व सूजन, दर्द और मुक्त कणों से लड़ने में सहायक होते हैं। पारंपरिक चिकित्सा में इसे कामशक्ति बढ़ाने, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, टीबी, उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों के उपचार में उपयोग किया जाता है। यह लिवर और किडनी की सुरक्षा करने के साथ–साथ मधुमेह नियंत्रण और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी सहायक माना जाता है।

हालाँकि, जलवायु परिवर्तन, देर से होने वाली बर्फबारी और अत्यधिक दोहन के कारण इसकी संख्या लगातार घट रही है। इसी वजह से वैज्ञानिक अब प्रयोगशालाओं में इसका कृत्रिम उत्पादन करने का प्रयास कर रहे हैं। यदि इसके संग्रहण और व्यापार के लिए उचित नीति बनाई जाए, तो यह उत्तराखंड और अन्य हिमालयी क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

प्रस्तुति : डॉ. इंद्रेश कुमार पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर (वनस्पति विज्ञान),
डॉ. शिवानंद नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग

चित्रों में दर्ज हिमालय का जीवंत इतिहास

देहरादून स्थित दून पुस्तकालय एवं शोध केंद्र में आरंभ हुई 170 वर्ष पुराने हिमालयी चित्रों की प्रदर्शनी केवल एक कला आयोजन नहीं, बल्कि इतिहास, भूगोल और संस्कृति के जीवंत दस्तावेजों से संवाद का दुर्लभ अवसर था। जर्मनी के श्लागिंटवाईट बन्धु द्वारा निर्मित ये चित्र उस समय के हिमालय को हमारे सामने इस तरह प्रस्तुत करते हैं, मानो हम स्वयं उस युग में उपस्थित हों। आज जब विकास, पर्यटन और आधुनिकता के दबाव में हिमालय का स्वरूप तेजी से बदल रहा है, ऐसे में इन चित्रों का महत्व और भी बढ़ जाता है। ये केवल दृश्य नहीं हैं, बल्कि वे साक्ष्य हैं नदियों के स्वाभाविक प्रवाह के, पहाड़ों की मौलिक संरचना के, और उन मार्गों के जिनसे होकर सभ्यता ने अपने कदम आगे बढ़ाए। जम्मू–कश्मीर से लेकर बदरीनाथ, केदारनाथ, मिलम, सुन्दरढूंगा, नैनीताल और दार्जिलिंग तक फैली इन झलकियों में एक समूचे भू–भाग का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक मानचित्र सजीव हो उठता है।

इस प्रदर्शनी की विशेषता यह भी है कि यह केवल भारत तक सीमित प्रयास नहीं है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग का उत्कृष्ट उदाहरण है। म्यूनिख के संग्रहालय, श्लागिंटवाईट परिवार के उत्तराधिकारियों, तथा विद्वानों जैसे प्रो. शेखर पाठक और प्रो. हरमन क्रुत्जमैन की संयुक्त पहल ने इसे संभव बनाया है। यह दर्शाता है कि ज्ञान और विरासत की कोई सीमाएं नहीं होती हैं, वे वैश्विक साझेदारी से और अधिक समृद्ध होती हैं। प्रो. शेखर पाठक द्वारा 2015 में म्यूनिख में देखे गए इस संग्रह को भारत लाने का विचार आज साकार हुआ है। यह केवल एक प्रदर्शनी नहीं, बल्कि उस दृष्टि का परिणाम है, जिसमें अतीत को वर्तमान से जोड़ने की आकांक्षा निहित है। वहीं, संस्थापक प्रो. बी.के. जोशी

साईं सृजन पटल-मई 2026

प्राकृतिक और सांस्कृतिक धरोहर के प्रति कितने सजग हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम ऐसे प्रयासों को केवल सराहें ही नहीं, बल्कि उनसे प्रेरणा भी लें। हिमालय केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक चेतना का आधार है। इन चित्रों के माध्यम से जब हम अतीत के हिमालय से साक्षात्कार करते हैं, तो यह प्रश्न भी हमारे सामने खड़ा होता है क्या हम आने वाली पीढ़ियों के लिए उसी हिमालय को सुरक्षित रख पाएंगे? इस प्रदर्शनी का महत्व इसी आत्ममंथन में निहित है।

और अन्य वक्ताओं ने जिस प्रकार इस आयोजन को शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों और आम नागरिकों के लिए उपयोगी बताया, वह इसकी व्यापक प्रासंगिकता को रेखांकित करता है। दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर से शुरू होकर देहरादून और आगे नैनीताल तक पहुँचने वाली यह प्रदर्शनी एक यात्रा भी है ज्ञान की, जिज्ञासा की और आत्मबोध की। यह हमें न केवल हिमालय को देखने का नया दृष्टिकोण देती है, बल्कि यह भी सोचने को प्रेरित करती है कि हम अपनी

प्रस्तुति - अंकित तिवारी, उप संपादक

कुछ अलग

हाथियों की घुसपैठ रोकने के लिए होगा मधुमक्खीपालन

उत्तराखंड सरकार की 30 अप्रैल को हुई कैबिनेट बैठक में 'उत्तराखंड वन सीमांत मौनपालन मधुमक्खी आधारित आजीविका और मानव एवं हाथी संघर्ष न्यूनीकरण नीति' को मंजूरी मिल गई है। प्रदेश में मानव–हाथी संघर्ष कम करने के लिए सरकार ने यह पहल की है। अब आबादी से सटे वन क्षेत्रों की सीमा पर मधुमक्खी पालन को बढ़ावा दिया जायेगा, जो हाथियों की घुसपैठ को रोकेगा। इसके तहत वन क्षेत्रों की सीमाओं पर बड़े पैमाने पर मधुमक्खी पालन किया जायेगा। इससे जहां एक ओर शहद उत्पादन बढ़ेगा,वहीं दूसरी ओर मधुमक्खियां रिहायशी इलाकों में हाथियों के लिए प्राकृतिक अवरोध अर्थात् 'बायो फेंस' का काम भी करेंगी। वन्य जीव संस्थान के विशेषज्ञों के अनुसार, जिन क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन होता है,वहां हाथी उनकी आवाज सुनकर दूर रहते हैं। उत्तराखंड का लगभग 70 प्रतिशत भूभाग वन क्षेत्र होने से मधुमक्खी पालन की बड़ी संभावनाएं हैं। इस नीति का उद्देश्य केवल 'वन्यजीव प्रबंधन' तक ही सीमित नहीं है, बल्कि स्थानीय लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना भी है।

प्रस्तुति : श्रीमती नीलम तलवाड़

जोझोड़ा रीति-रिवाज से एक परिवार में एक साथ हुई छह शादियाँ

दुल्हन लेकर आती है बारात दुल्हे के घर

जौनसार बावर अपने अनूठे रीति–रिवाजों को लेकर विख्यात है। यहां के रीति–रिवाज, तीज– त्योहार पूरे देश से अलग व अनूठे हैं, साथ ही यहां की लोक संस्कृति का भी विशेष महत्व है। महासू देवता की भूमि कहे जाने वाले जौनसार बावर के चकराता ब्लॉक की खत (पट्टी) विशलाड़ के दुर्गम और दूरस्थ गांव खारसी में 29 अप्रैल 2026 को छह शादियां एक साथ पारंपरिक जोझोड़ा रीति– रिवाज से सम्पन्न हुईं। जिसमें पांच दुल्हनें बारात लेकर आई व घर की एक बेटी बारात लेकर दूसरे गांव गई, पूरे क्षेत्र में यह विवाह सामाजिक रूप से परिवार की एकजुटता के लिए चर्चा में रहा। खारसी गांव में एक ही परिवार में पांच दुल्हनें बारात लेकर आईं व एक बेटी की विदाई हुई। चकराता ब्लॉक व तहसील के अंतर्गत जौनसार बावर क्षेत्र के दूरस्थ गांव खारसी में एक अनोखा और ऐतिहासिक विवाह समारोह (जोझोड़ा) देखने को मिला। यहां एक ही परिवार में एक साथ छह शादियां संपन्न हुईं, जिनमें पांच दुल्हनें जिन्हें स्थानीय भाषा मे (जोझोल्टी) कहते हैं, एक साथ अपने ससुराल खारसी पहुंची तो एक बेटी का कन्या दान भी भी किया गया। यह दृश्य व शादी न केवल आकर्षण का केंद्र बना, बल्कि क्षेत्र की समृद्ध परंपरा और सामाजिक एकता की मिसाल भी पेश करता है। खारसी गांव के दौलत सिह चौहान व मोहन सिंह चौहान दो भाई हैं व दोनों का एक संयुक्त परिवार है जिसमें 30 सदस्य हैं। इन दोनों भाइयों ने यह विवाह संपन्न कर एक इतिहास रच दिया। खारसी के दौलत सिंह चौहान ठेकेदार हैं जो एक संयुक्त परिवार के मुखिया भी हैं। इस परिवार ने एक अच्छी मिसाल पेश की है। आज के युग में जहां दो भाई एक साथ नही रह पाते, वहां अनेकों मां के दर्जनों बेटे संयुक्त परिवार की परंपरा में बंधे हैं। इस विवाह ने साबित कर दिया है की जौनसार में संयुक्त परिवार की परंपरा आज भी जीवित है। ग्रामीणों ने बताया कि इनका परिवार कई पीढ़ियों से साथ रहकर हर जिम्मेदारी को मिलकर निभाता आया है। इसी परंपरा के तहत इस परिवार ने सामूहिक विवाह का आयोजन किया गया, जिससे आर्थिक बोझ कम होने के साथ–साथ परिवार और समाज में सहयोग की भावना भी मजबूत हुई।

लोगों का कहना है कि इस तरह के आयोजनों में जहां एक ओर खर्च कम होता है वहीं, दूसरी ओर रिश्तों में अपनापन भी बढ़ता है। आधुनिक समय में जहां शादियां दिखावे की ओर बढ़ रही हैं, वहीं खारसी निवासी दौलत सिंह ने इस झोजोड़े, जाग के आयोजन को भव्यता, सभ्यता व

सादगी भरी परंपरा और एकता की मिसाल पेश करते हुए पूरे क्षेत्र के लिए प्रेरणादायक उदाहरण बनकर इस विवाह का किया। इस सामूहिक विवाह समारोह ने समाज को यह संदेश दिया है कि असली खुशी आपसी प्रेम,सहयोग और संस्कारों में ही छिपी होती है। खारसी गांव में इस संयुक्त परिवार के दो सगे भाइयों दौलत सिंह चौहान व मोहन सिंह चौहान की छह संतानों (पांच भाई और एक बहन) खारसी निवासी दौलत सिंह के पुत्र नरेंद्र की शादी खत शैली के हयो गांव निवासी अंजू संग, राहुल की शादी खत बिशलाड़ के जोगियो निवासी आंचल संग और प्रदीप की शादी जोगियो निवासी निक्की के साथ हुई। इसी प्रकार उनके छोटे भाई मोहन सिंह के पुत्र प्रीतम का विवाह खत सैली की हयोऊ निवासी पुनीता और अमित की शादी खत भरम के गोरछा निवासी निर्मला के साथ हुई। जबकि परिवार की बेटी राधिका अपनी बारात लेकर मरलोऊ निवासी रणवीर के घर पहुंची। उसका विवाह रणवीर के साथ हुआ। खास बात है कि जौनसार बावर क्षेत्र में शादियों में दहेज नहीं दिया जाता है। खारसी गांव में हुई इस शादी में भी जौनसारी परंपरा कायम रखते हुए दहेज में मात्र पांच सामान दिए गए। साथ ही शादी का विशेष आकर्षण माने जाने वाली रस्म का निर्वहन करते हुए रईणी भोज, जिसमें सबसे पहले आदर सम्मान के साथ गांव की महिलाओं के लिए विशेष भोज का आयोजन किया जाता है, को भी निभाया गया। जौनसार बावर में ज्येष्ठ पुत्र के विवाह समारोह को बड़े रूप में सम्पन्न किया जाता है। लोक परंपरा के अनुसार इस शादी को बारिया का जाग कहा जाता है। इसमें घर परिवार व गांव की बहू–बेटियों के सम्मान में रईणी भोज का विशेष और भव्य रूप से आयोजन किया जाता है।

खारसी में छह शादियां एकसाथ होने की खबर सोशल मीडिया पर खूब वायरल हुई जिससे इस शादी की चर्चा देश–विदेश तक हुई लोगों ने कमेंट्स में कहा कि यह अद्भुत दृश्य है कि इस आधुनिक युग में भी ऐसा हो सकता है ! कहा कि परिवार में किया गया सामूहिक विवाह खर्चों को तो बचाता ही है साथ ही परिवार की एकजुटता को भी दिखाता है।

प्रस्तुतिः दीपक मोहल,
वरिष्ठ पत्रकार
चकराता, देहरादून

साक्षात्कार

फिल्में मनोरंजक के साथ ही संदेशपरक भी हों : रवि ममगाईं

उत्तराखंडी सिनेमा के सशक्त हस्ताक्षर फिल्म निर्माता व निर्देशक रवि ममगाईं की 25 सालों की संघर्षमयी यात्रा और वर्तमान परिदृश्य पर नज़र डालने हेतु, साईं सृजन पटल के सलाहकार मण्डल सदस्य डॉ. अनूप वीरेन्द्र कठैत ने उनसे इस संबंध में बातचीत की। यहां प्रस्तुत हैं उनसे बातचीत के कुछ प्रमुख अंश–

प्रश्नः रवि जी 'साईं सृजन पटल' के साहित्यिक मंच पर आपका अभिनन्दन एवं आभार। सबसे पहले आपको आपकी गत वर्ष प्रदर्शित फिल्म 'मिशन देवभूमि' की अपार सफलता के लिए बहुत–बहुत बधाई।

रवि : जी बहुत शुक्रिया, नमस्कार। साईं सृजन पटल द्वारा मुझे आमंत्रित करने लिए धन्यवाद। आपके इस प्रतिष्ठित साहित्यिक मंच को अनेक शुभकामनायें।

प्र.: कृपया अपने बारे में संक्षेप में कुछ बताइए ?

रवि: मैं मूल रूप से टिहरी गढ़वाल, पैणूला ग्राम सभा के ककडपाली गाँव से हूं। मेरी प्रारंभिक शिक्षा गाजियाबाद से तथा उच्च शिक्षा डी. ए.वी. पीजी कालेज देहरादून से हुई है । साथ ही 'इंडियन फिल्म एवं टेलिवीजन इंस्टीट्यूट' से अभिनय एवं निर्देशन में डिप्लोमा प्राप्त हूं। बचपन से ही अभिनय में रूचि व स्कूल समय से एवं रंगमंच से मेरे अभिनय की शुरुआत हुई। मैं वर्तमान में देहरादून में निवास कर रहा हूं।

प्र.: फिल्म निर्देशन के क्षेत्र में आने की प्रेरणा आपको कहाँ से मिली ?

रवि : एक्टिंग के क्षेत्र में डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात सभी साथियों ने मुंबई में करिअर बनाने का निर्णय लिया परंतु मैंने अपने उत्तराखंड में ही कुछ अलग अपनी बोली भाषा में करने का निर्णय लिया। सर्वप्रथम 'लटुली' नाम से एक एलबम का निर्माण प्रारम्भ किया, साथ ही संस्कृति विभाग से 'साधना संगीत कला केन्द्र' के नाम से पंजीकरण करा कर नुक्कड़ नाटक व स्टेज कार्यक्रम प्रारंभ किये। उसके बाद शॉर्ट फिल्म बनाना प्रारंभ किया। मैंने अपने दादा जी सुविख्यात अभिनेता व रंगमंच कलाकार एस. पी. ममगाईं जी को गढ़वाली फिल्मों– चक्रचाल, सतमंगल्या, बेटी ब्वारी, घरज्वैं व

रैबार आदि में देखकर अपना आदर्श मानकर प्रेरणा ली और फिल्म निर्माण की ओर अग्रसर हुआ।

प्र. क्या आपको बचपन से ही फिल्मों ने प्रभावित किया है?

रवि : हां बिल्कुल, जब मैं छोटा था कक्षा 5वीं से ही सिनेमा, मेरे दिमाग में घर कर चुका था। मैं अपने दोस्तों को इकट्ठा कर एक कहानी या किसी फिल्म के किरदारों का अभिनय करता और खेल में माचिस की डिब्बी को फाड़कर टिकट बनाकर शाम को किसी कमरे में भाई, बहन,दोस्तों को एक्टिंग दिखाता था, साथ ही कैसेट से उस फिल्म के गाने बजाकर एक बंद कमरे में पूरी फिल्म की एक्टिंग किया करता था।

प्र. उत्तराखंडी सिनेमा को चुनने के पीछे आपकी क्या सोच थी ?

रवि : सोच साफ थी, बालीवुड में स्ट्रगल करने से अच्छा है कि अपने उत्तराखंड में रहकर यहां के सिनेमा में ही कुछ अलग करूं। एक बार की बात है जब मैं 9वीं में पढ़ता था तो दिल्ली में दूरदर्शन पर फौजी एवं एक अन्य सीरियल में मेरा एक चाइल्ड आर्टिस्ट में चयन हो गया था, परन्तु मेरे पिता जी द्वारा साफ मना कर दिया गया, क्योंकि उनको इस लाइन में काम करना पसंद नहीं था।

प्र. आपकी नजर में 'अच्छी फिल्म' की परिभाषा क्या है ?

रवि : जिस फिल्म से हम समाज में कुछ ऐसा संदेश देने में कामयाब रहे,जो समाज को बदलने में या समाज की कुरीतियों को बदलने का दृष्टिकोण रखती हो व साथ ही फिल्म मनोरंजन भी करती हो। मेरी नजर में वही एक अच्छी फिल्म है। लेकिन जिस फिल्म से कोई मैसेज ना मिले तो वो फिल्म नहीं टाइम पास सिनेमा कहलायेगा।

प्र. आप, बेबाकी से अपनी बात सामने रखते हैं, जिसे कहने में अक्सर दूसरे निर्माता–निर्देशक कतराते हैं। आपके दर्शक आपको 'फायर ब्रांड' निर्देशक भी कहते हैं आपका इस पर क्या रिएक्शन है ?

रविः मैने अक्सर वही कहा है जो आज की सच्चाई है। हम कब तक भेड़चाल चलते रहेंगे। हमारा सिनेमा तभी आगे बढ़ सकता है,जब हम कुछ हटकर करेंगे। मेरी बातों का किसी को बुरा लगे तो लगे। मैं अपनी

कोशिश में लगा हूं और अगर जनता सिनेमाहॉल से बाहर निकलकर, मेरे अभिनय और निर्देशन में फायर पाते हैं तो यह उनका प्यार और आशीर्वाद है।

प्र. आप अपनी किसी एक पसंदीदा फिल्म/प्रोजेक्ट के बारे में बताइए और वह आपके लिए खास क्यों है ?

रविः मेरी पसंदीदा फिल्म 'पोथली' रही है जो सिनेमाघरों में प्रदर्शित मेरी पहली फिल्म थी , जब फिल्म का पहला शो खत्म होकर दर्शकों ने 10 मिनट तक लगातार तालियों की बौछार की और मेरे गले में मालायें पहनायी तो मुझे रोना आ गया। मुझे मेरे पिताजी बहुत याद आये क्योंकि वो कहा करते थे, ये काम बेकार है, इसमें तुम्हें कभी सफलता नहीं मिल सकती, लेकिन ये कामयाबी मैं उनको नहीं दिखा सका, वो दुनिया से जा चुके थे। उस दिन मैं बहुत रोया था, काश वे भी मेरी सफलता के साक्षी बनते।

प्र. फिल्म बनाने की पूरी प्रक्रिया (प्री –प्रोडक्शन से पोस्ट–प्रोडक्शन तक) को आप कैसे देखते हैं ?

रविः निर्माण का हर पहलू चाहे प्री–प्रोडक्शन हो, पोस्ट–प्रोडक्शन हो या फिल्म रिलीज प्रदर्शन हो, सभी अहम होते हैं। जरा सी लापरवाही आप की फिल्म को गलत दिशा में भटका देती है। एक निर्देशक होने के नाते एक फिल्म हमारा वो बच्चा होता है, जिसे हम एक साल पाल पोस कर दर्शकों के सामने लाते हैं। अगर उस बच्चे की परवरिश अच्छी होगी तो लोग तारिफ करेंगे और एक बाप की तरह निर्देशक का सीना चौड़ा होता है। हर फिल्म में उस निर्माता/निर्देशक की आत्मा बसती है।

प्र. अभी तक आपकी दो फिल्में बड़े परदे पर धमाल मचा चुकी हैं...सीमित संसाधनों में फिल्म बनाते समय सबसे बड़ी चुनौती क्या होती है ?

रविः निश्चित रूप से फंड, साथ ही सिर्फ एक ही चिंता

रहती है कि बजट ना होने के बावजूद किसी भी रूप में फिल्म का स्वरूप ना बदलने पाये क्योंकि दर्शक नहीं जानता उन परिस्थितियों को, परेशानियों को। वो एक अच्छी फिल्म चाहता है,अच्छी कहानी और अच्छा अभिनय देखने आता है।

प्र. क्या उत्तराखंड में फिल्म निर्माण के लिए पर्याप्त तकनीकी संसाधन उपलब्ध हैं ?

रविः आज सभी संसाधन उपलब्ध हैं। हां! पहले ऐसा नहीं था मगर अब अच्छे कैमरे लैंस व सारे संसाधन हमारे पास है। एंडिंग के सॉफ्टवेयर, म्यूजिक के साफ्टवेयर सब कुछ उपलब्ध हैं, हमारे यहां अगर कमी है तो वो है कि हम सीखना नहीं चाहते, हमारे टेक्निशियन को हर बार कुछ ना कुछ सीखना चाहिए और एक्सपेरिमेंट करते रहना चाहिए।

प्र. स्थानीय कलाकारों और टेक्निशियनों के साथ काम करने का आपका अनुभव कैसा रहा ? तकनीक रूप से आज का सिनेमा कहाँ तक पंहुचा?

रविः हमारे कलाकार, टेक्नीशियन बहुत ही सहज हैं। सब एक परिवार की तरह काम करते हैं , मगर तकनीकी रूप से आज हम बहुत पीछे हैं संसाधनों की कमी नहीं है, बस हम सीखना शुरु करें, नये–नये वीडियोज, फिल्मों से ही बहुत कुछ सीखा जा सकता है। पंजाबी सिनेमा , भोजपुरी सिनेमा, नेपाली सिनेमा सब हमसे आगे हैं। यहां लोकेशन से लेकर सब कुछ है, बस ज्ञान के स्रोत खोजकर फिल्में बनाना जरूरी है। हमारे कुछ लोग आज भी पुराना सिनेमा बना रहे हैं, हम अभी तक 1980 के दशक तक की फिल्म की तकनीक की फिल्म नहीं बना पा रहे हैं, लेकिन हमे एक बड़ी और ऊंची छलांग लगाना जरूरी है।

प्र. वर्तमान में उत्तराखंडी सिनेमा की स्थिति को आप कैसे आंकते हैं ?

रविः अभी हम बहुत पीछे हैं,यहां कहानियों की कमी नहीं है। बजट भी मायने नहीं रखता अच्छी फिल्म बनाने के लिए अभी हमको कम बजट की अच्छी कहानियों को चुनना चाहिए जब फिल्में बिजनेस देने लगे तो बजट धीरे–धीरे बढ़ाकर अच्छी फिल्मों का निर्माण संभव होगा।

प्र. क्षेत्रीय फिल्मों को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने में क्या बाधाएं हैं ?

रविः छोटा प्रदेश और हर 10 किलोमीटर पर भाषा का बदलाव। क्षेत्रीय फिल्म राष्ट्रीय स्तर पर पहचान तभी पा सकती है जब उसकी भाषा सहज और सरल हो जो आसानी से सभी को समझ में आ सके। आँचलिक फिल्म को राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाने के लिए इसका सभी जगह रिलीज होना बहुत जरूरी है। सब्जेक्ट दमदार हो जो हर जगह पसंद किया जाये और समाज के हर वर्ग को फिल्म अपने क्षेत्र की लगे।

प्र. क्या OTT प्लेटफॉर्म्स से उत्तराखंडी सिनेमा को फायदा हुआ है ?

रविः अभी तक तो नहीं , जो बड़े OTT है वो हमारी फिल्म को इस लिए नहीं रिलीज कर रहे की मार्केटिंग बहुत छोटा है। छोटे OTT पर दर्शक जाता नहीं है अभी तो फिल्मों को लोग यूट्यूब पर ही सर्च करते हैं और देखना चाहते हैं।

प्र. दर्शकों की पसंद में आप क्या बदलाव महसूस करते हैं ? उन्हें आज भी सिनेमा हॉल तक लाने में इतनी चुनौती क्यों है ?

रविः दर्शक जो मनोरंजन एक्साइटमेंट बॉलीवुड, या साऊथ की फिल्मों में देखता है वह हम नहीं दे पा रहे हैं, जबकि दर्शक चाहता है की हमारी फिल्मों में भी वही तकनीक हो, विजुअल इफेक्ट हो,बेहतरीन साउंड क्वालिटी हो। हमारा दर्शक उत्तराखंड की फिल्मों को देखना समय और पैसे की बरबादी मानता है लेकिन अच्छी फिल्म को देखने घर से तब निकलता है जब उसके रिव्यू लोगों से सुनता है। कुछ फिल्मकारों का मानना था कि फ्री के चलन चलाने से दर्शकों का रुझान बढेगा परंतु मैं हमेशा इसका विरोध करता रहा हूं । आज उन्होंने ये स्थिति पैदा कर दी है कि फ्री में भी लोग नहीं आ रहे हैं मगर कुछ ऐसी फिल्म निर्माता निर्देशक हैं जो अच्छा काम कर रहे हैं और अच्छा सिनेमा बना रहे है, दर्शकों का ध्यान खींचने में कामयाब भी रहे हैं।

प्र. आपकी फिल्मों के माध्यम से आप समाज को क्या संदेश देना चाहते हैं? आज का युवा कहां तक जुड़ पा रहा है?

रविः सबसे पहले देवभूमि की अस्मिता बरकरार रहे और युवाओं के मनोरंजन का पूरा ध्यान रखा जाये। समाजिक कुरीतियों, उत्तराखंड की समस्याओं को

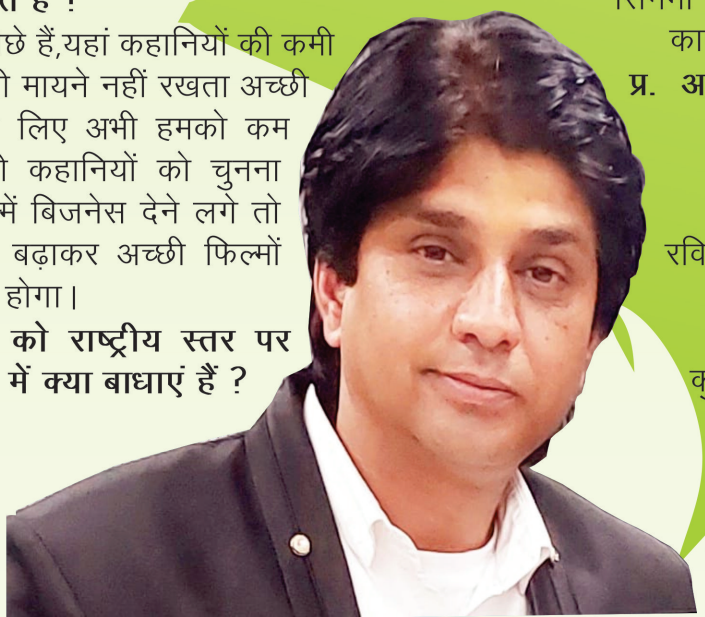

प्रमुखता से मेरी फिल्म उठाती हैं और हर फिल्म उस सब्जेक्ट के आधार पर संदेश दे, ऐसा प्रयास रहता है। युवा अभी धीरे–धीरे जुड़ रहा है मगर जिस दिन युवा पूर्ण रूप से सिनेमा से जुड़ेंगे उत्तराखंडी सिनेमा उछाल मार जायेगा।

प्र. क्या सिनेमा उत्तराखंड की संस्कृति और पहचान को संरक्षित करने में मदद कर सकता है ? कैसे ?

रवि: सिनेमा हमेशा से समाज का दर्पण होता है हर प्रदेश का अपना सिनेमा अपनी संस्कृति की अलौकिक छाप छोड़ता है, वहां के रिवाज, वहां की परंपरा आज सिनेमा गीतों के माध्यम से ही जिंदा रह सकती है और ये हमारा भी दायित्व है की जो इतिहास हमारे प्रदेश का रहा है जो बलिदानियों के अथक प्रयासों से हमें प्रदेश मिला है वो सिनेमा के माध्यम से अमिट और हमेशा याद रखने का कार्य सिनेमा करता रहे। जो बच्चे अपने रीति –रिवाज परंपरा को नहीं जानते वो आज सिनेमा और वीडियोज के माध्यम से उसे जान रहे हैं।

प्र. क्या आपने किसी सामाजिक मुद्दे को अपनी फिल्मों में उठाया है ?

रवि: हां! बिल्कुल मेरी फिल्में समाजिक मुद्दों पर ही केन्द्रित होती हैं जैसे 'पोथली' में रेप पीड़ित बेटी के पिता की स्थिति हो या मिशन देवभूमि लव जिहाद में शिकार हो रही बेटियां हों। इन फिल्मों ने बड़े परदे से चिल्लाकर दर्शकों को सोचने पर मजबूर कर दिया था।

प्र. आने वाले समय में उत्तराखंडी सिनेमा को आप कहाँ देखते हैं?

रवि: आने वाला समय उत्तराखंड सिनेमा का सुनहरा हो सकता है, लेकिन विजन सिर्फ और सिर्फ अच्छी फिल्म बनाना होना चाहिए। सिर्फ सब्सिडी के लिए फिल्म ना बने, अच्छे विजन, अच्छी सोच से फिल्म बनें तो भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल होगा।

प्र. नए फिल्ममेकर्स को आप क्या सलाह देना चाहेंगे?

रवि: यही कि, फिल्म के हर पहलू पर विचार करके फिर फिल्म निर्माण करें। जल्दबाजी बिल्कुल ना करें, जल्दबाजी में बनायी 10 फिल्में आप को कोई पहचान नहीं देगी, बल्कि पूरे मनोयोग से बनाई एक फिल्म आप को लाइमलाइट में ला सकती है। दर्शकों के सामने फिल्म को रिलीज करने से पहले बारीकी से विश्लेषण कर हर कमी को दूर करके रिलीज करो तो सिनेमा तरक्की जरूर करेगा।

प्र. सरकार या संस्थाओं से आप किस प्रकार के सहयोग की अपेक्षा रखते हैं?

रवि: सरकार अच्छा कर रही है। संस्थान भी खुलकर सपोर्ट कर रहे हैं, सब्सिडी सभी को मिल रही है, बस फिल्म मेकर को ये विजन त्यागना चाहिए और विजन केवल और केवल दर्शक होने चाहिए। सरकार अपनी और से पूरा सहयोग कर रही है, हां कुछ संस्थानों को खुलकर सामने आने की आवश्यकता है।

प्र. आपका आने वाला प्रोजेक्ट क्या है?

रवि: मैं एक नये प्रोजेक्ट पर कार्य कर रहा हूं संभवत इस वर्ष इसका निर्माण हो जायेगा, जिसका टाइटल है 'सीमा समाप्त'। इस कहानी में फिर से पहाड़ों की पीड़ा व ज्वलंत मुद्दे को प्रमुखता से उठाया गया है। यह फिल्म भी हमारे उत्तराखंड की एक जटिल समस्या की आवाज उठाती, बड़े परदे पर धमाल करती नजर आएगी।

साईं सृजन पटल : रवि जी! आपने अपने कीमती समय में से समय निकालकर हमारे पटल पर अपना अनुभव साझा किया, आपके आने वाले सभी प्रोजेक्ट्स के लिए शुभकामनायें, आपका बहुत–बहुत धन्यवाद।

रवि ममगाईं : जी आपका भी धन्यवाद।

डॉ. अनूप वीरेन्द्र कठैत
(साहित्यकार व फिल्म समीक्षक)

सिद्ध स्थल

उत्तराखंड में गरुड़ भगवान का इकलौता मंदिर

जहां मिलती है कालसर्प दोष से मुक्ति

उत्तराखंड की देवभूमि अपने भीतर जितनी प्राकृतिक सुंदरता समेटे हुए है, उतनी ही गहराई से वह आस्था, पुरातन परंपराओं और आध्यात्मिक ऊर्जा का केंद्र भी है। इन्हीं दिव्य स्थलों में एक विशेष स्थान है गरुड़ मंदिर का, एक ऐसा सिद्ध स्थल, जो न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि लोकमान्यताओं और आध्यात्मिक विश्वासों का भी जीवंत प्रतीक है।

पौड़ी जनपद में, ऋषिकेश से लगभग 10 किलोमीटर आगे और नीलकंठ महादेव मंदिर से पहले मणिकूट पर्वत पर स्थित यह प्राचीन मंदिर भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ देव को समर्पित है। यह स्थान 'गरुड़ चट्टी' के नाम से प्रसिद्ध है और विशेष बात यह है कि इसे भगवान गरुड़ का उत्तराखंड में एकमात्र प्रमुख मंदिर माना जाता है।

तप और त्याग की भूमि

गरुड़ मंदिर केवल एक मंदिर नहीं, बल्कि तपस्या और त्याग की गाथा का साक्षात रूप है। मान्यता है कि गरुड़ भगवान ने यहां कठोर तप कर ऋषि के श्राप से मुक्ति पाई थी। उनकी इस तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने उन्हें दर्शन दिए। किंतु गरुड़ जी ने सांसारिक सुखों के बजाय प्रभु के चरणों में स्थान मांगा—यह कथा न केवल भक्ति की पराकाष्ठा दर्शाती है, बल्कि त्याग और समर्पण की भी अनुपम मिसाल प्रस्तुत करती है।

भगवान विष्णु ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि जो भी भक्त चार धाम यात्रा से पूर्व यहां आकर गरुड़ जी को प्रणाम करेगा, उसकी यात्रा सरल और निर्विघ्न होगी। इतना ही नहीं, यह भी मान्यता है कि जो व्यक्ति केवल इस पहली चट्टी के दर्शन कर ले, उसे चार धाम यात्रा का पुण्य प्राप्त हो जाता है।

84 चट्टियों की परंपरा और पहला पड़ाव

प्राचीन काल में चार धाम यात्रा पैदल की जाती थी और उस मार्ग में 84 'चट्टियां' या पड़ाव हुआ करते थे। गरुड़ चट्टी इन 84 चट्टियों में प्रथम पड़ाव मानी जाती है। यह परंपरा न केवल यात्रियों के विश्राम का साधन थी, बल्कि आध्यात्मिक ऊर्जा संचित करने का माध्यम भी थी। गरुड़ चट्टी आज भी उस परंपरा की जीवित स्मृति है।

कालसर्प दोष से मुक्ति का विश्वास

गरुड़ चट्टी की सबसे विशेष पहचान है—कालसर्प दोष निवारण स्थल के रूप में इसकी मान्यता। ज्योतिषीय दृष्टि

से जिन व्यक्तियों की कुंडली में कालसर्प दोष होता है, वे यहां विशेष पूजा–अर्चना कर इस दोष से मुक्ति की कामना करते हैं। लोकविश्वास है कि गरुड़ देव के चरणों में सच्ची श्रद्धा से प्रार्थना करने पर जीवन की बाधाएं दूर होती हैं और मानसिक शांति प्राप्त होती है।

रामायण से जुड़ी आस्था

इस स्थल से जुड़ी एक और कथा रामायण काल से संबंधित है। जब भगवान राम और लक्ष्मण नागपाश में बंध गए थे, तब गरुड़ भगवान ने उन्हें मुक्त किया था। इस निस्वार्थ सेवा से प्रसन्न होकर भगवान राम ने वरदान दिया कि कलियुग में जो भी भक्त गरुड़ जी की शरण में आएगा, उसके कालसर्प दोष, पितृ दोष और अन्य ग्रह बाधाएं समाप्त होंगी। यह कथा गरुड़ चट्टी को केवल एक मंदिर नहीं, बल्कि संकटमोचक शक्ति के केंद्र के रूप में स्थापित करती है।

प्राकृतिक सौंदर्य और आध्यात्मिक शांति

गरुड़ चट्टी का वातावरण स्वयं में एक साधना स्थल जैसा अनुभव कराता है। मंदिर परिसर के चारों ओर प्राकृतिक जलस्रोतों का कुंड है, जिसमें तैरती रंग–बिरंगी मछलियां इस स्थान की सौंदर्यता को और बढ़ा देती हैं। यहां स्थित लक्ष्मी–नारायण मंदिर, दुर्गा मंदिर और शिव मंदिर इस स्थल को एक संपूर्ण आध्यात्मिक परिसर का रूप देते हैं।

आस्था और आधुनिकता के बीच संतुलन

आज जब तीर्थाटन का स्वरूप बदल रहा है, गरुड़ चट्टी जैसे स्थल हमें यह याद दिलाते हैं कि आस्था केवल यात्रा नहीं, बल्कि अनुभव है। एक ऐसा अनुभव, जो व्यक्ति को भीतर से परिष्कृत करता है। यह स्थान उन लोगों के लिए भी आशा का केंद्र है, जो चार धाम यात्रा करने में असमर्थ हैं, क्योंकि मान्यता है कि यहां के दर्शन मात्र से ही चार धाम का पुण्य प्राप्त हो जाता है। गरुड़ चट्टी केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि विश्वास, तपस्या और मुक्ति की त्रिवेणी है। यह स्थान हमें सिखाता है कि सच्ची भक्ति में मांग कम और समर्पण अधिक होता है। उत्तराखंड की गोद में स्थित यह मंदिर आज भी अनगिनत श्रद्धालुओं को आध्यात्मिक ऊर्जा प्रदान कर रहा है और उन्हें जीवन की कठिनाइयों से उबरने का मार्ग दिखा रहा है। गरुड़ चट्टी जहां आस्था केवल दर्शन नहीं, बल्कि आत्मिक अनुभूति बन जाती है।

प्रस्तुति : अंकित तिवारी, उप संपादक

पृष्ठ : 19 का शेष ....

जैसी दिखाई देती है। कहा जाता है कि यहां पर चार धाम गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ व बद्रीनाथ के प्रतीक स्वरूप दर्शन एक ही स्थान पर हो जाते हैं । 33 करोड़ देवी देवताओं के स्वरूप में गुफा के विभिन्न हिस्सों में अलग–अलग आकृतियां दिखाई देती हैं, जिन्हें देवी–देवताओं का स्वरूप माना जाता है। एक स्थान ऐसा भी है जिसे पांडवों के स्वर्ग जाने का रास्ता माना जाता है। गुफा में अन्य कई आकृतियां जैसे अमरनाथ गुफा व कैलाश पर्वत का प्रतीक मानी जाती हैं। समुद्र मंथन से निकले 14 रत्नों की प्रतीकात्मक स्वरूप प्राकृतिक चट्टानों में दिखाई देती हैं, जिनमें से एक आकृति माता लक्ष्मी की प्रतीक माना जाती है। एक स्थान पर गाय के थन जैसी आकृति दिखती है, जहां से पानी टपकता है। इसे कामधेनु का रूप माना जाता है कुछ चट्टानें हाथी के सिर एवं सूंड जैसी दिखती हैं जिसे एरावत माना जाता है। गुफा के अंदर प्राकृतिक शिला (पत्थर) जिसे गणेश जी के सर (मस्तक) के रूप में पूजा जाता है। कहा जाता है कि जब भगवान शिव ने गणेश जी का सिर काटा था, तब उनका सिर यहां आकर गिरा था। एक पेड़ जैसी संरचना को कल्पवृक्ष का प्रतीक माना जाता है, कुछ संरचनाओं को वरुणी मदिरा देवी का संकेत माना जाता है। चमकदार पत्थरों या संरचनाओं को कौस्तुभ मणि का प्रतीक कहा जाता है। गुफा की छत पर गोलाकार आकृति को चंद्रमा से जोड़ा जाता है, घोड़े जैसी आकृति को दिव्या घोड़े का रूप माना जाता है। चार युगों का प्रमाण भी यहां पर देखने को मिलता है। भगवान शिव की विराट जटाओं के दर्शन करने का सौभाग्य यहां पर मिलता है। सप्त ऋषियों ने भी इस स्थान पर तपस्या की थी। गुफा में चार द्वार क्रमशः पाप द्वार, रण द्वार, धर्म द्वार व मोक्ष द्वार माने गए हैं। काशी विश्वनाथ,उज्जैन के महाकाल, काल भैरव व ब्रह्म कमल के साथ ही भगवान शिव की 108 आसनों में से एक तांडव नृत्य के भी दर्शन होते हैं। इस अद्भुत मंदिर के दर्शन करने श्रद्धालु बहुत दूर–दूर से यहां पहुंचते हैं।

प्रस्तुति- डॉ. हरीश चंद्र रतूड़ी ,
विभागाध्यक्ष वाणिज्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग, (चमोली)

सकिना : लोकजीवन का हिस्सा है फूलों का यह पौधा

'मालू ग्वीरालू का बीच खिली सकिनी अहा !'

लोक गायक नरेंद्र सिंह नेगी के गीत की इस पंक्ति में आप सकिना के फूलों की सौंदर्य की कल्पना कर सकते हैं। सकिना के सुंदर गुलाबी और सफेद फूलों का खिलना प्रकृति के अनुपम श्रृंगार जैसा है। सकिना, जिसका वानस्पतिक नाम *Indigofera heterantha* है, न केवल सुंदरता बिखेरता है, बल्कि इसके कई औषधीय और पारंपरिक लाभ भी हैं। सकिना मध्य हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाने वाला एक जंगली झाड़ीनुमा पौधा है। बसंत के आगमन के साथ ही इसमें छोटी–छोटी फलियों और फूलों के गुच्छे आने लगते हैं। यह पौधा पहाड़ी

ढलानों और खेतों की मेड़ों पर प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। इसकी जड़ें आसपास की मिट्टी उपजाऊ बनाती है। इसकी कोमल टहनियों और पत्तियों का उपयोग पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है। सुखाने के बाद इसकी लकड़ियों का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में चूल्हा जलाने के लिए किया जाता है।

आयुर्वेद और लोक चिकित्सा में सकीना को इसकी शीतलता और गुणों के लिए जाना जाता है। इसकी पत्तियों और फूलों का लेप खुजली, चकत्ते और अन्य त्वचा संबंधी रोगों में राहत देता है। शरीर के घाव पर इसकी ताजी

पत्तियों का रस एंटीसेप्टिक की तरह काम करता है और घाव को जल्दी भरने में मदद करता है।

पारंपरिक ज्ञान के अनुसार, इसके अर्क का सीमित उपयोग पेट के कीड़ों को खत्म करने के लिए किया जाता रहा है। जोड़ों के दर्द या शरीर के किसी अंग में सूजन होने पर इसकी पत्तियों को गर्म करके बांधने से आराम मिलता है। इसके फूलों की तासीर ठंडी मानी जाती है, जो गर्मी के रोगों में लाभकारी होती है। गढ़वाल में सकिना केवल एक पौधा नहीं, बल्कि लोक जीवन का हिस्सा है। चैत के महीने में जब बेटियां अपने मायके आती हैं, तो खिली हुई सकीना उनके स्वागत का प्रतीक मानी जाती है। स्थानीय गीतों में भी इस फूल का जिक्र खूबसूरती से किया जाता है। आजकल इन फूलों की रौनक निश्चित रूप से पूरे वातावरण को खुशनुमा बनाती है।सकीना के फूलों का उपयोग उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में पारंपरिक रूप से व्यंजन बनाने के लिए भी किया जाता है। यहाँ कुछ मुख्य तरीके दिए गए हैं जिनसे इन फूलों को खाने में इस्तेमाल किया जाता है।

सकिना के फूलों का रायता

यह सबसे लोकप्रिय व्यंजन है। सकीना के ताजे फूलों को साफ करके हल्के गुनगुने पानी में धो लिया जाता है। इसके बाद इन्हें दही या मट्ठे में मिलाकर, पहाड़ी पिसे हुए नमक (लूण), हरी मिर्च और राई के तड़के के साथ तैयार किया जाता है। यह स्वाद में थोड़ा कसैला और तासीर में ठंडा होता है।

सकिना की सब्जी (भुज्जी)

सकिना के कोमल फूलों और कलियों को आलू के साथ मिलाकर सूखी सब्जी या 'भुज्जी' बनाई जाती है।

विधि : फूलों को हल्का सा उबालकर उनका अतिरिक्त कसैलापन निकाल दिया जाता है। फिर जखिया (पहाड़ी तड़का) और सामान्य मसालों के साथ इन्हें लोहे की कड़ाही में पकाया जाता है।

पकोड़े (पकौड़ी)

बसंत के मौसम में जब यह फूल बहुतायत में होते हैं, तो कई घरों में इनके पकोड़े भी बनाए जाते हैं। बेसन के घोल में साफ किए हुए फूलों को मिलाकर कुरकुरी पकौड़ियां तली जाती हैं, जो चाय के साथ बहुत स्वादिष्ट लगती हैं।

फूलों की चटनी

कुछ क्षेत्रों में सकिना के फूलों को पुदीने, हरी मिर्च और स्थानीय खट्टे (जैसे माल्टा या नींबू) के साथ पीसकर ताजी चटनी बनाई जाती है।

बनाने से पहले ध्यान रखने योग्य बातें :

फूलों को पकाने से पहले अच्छी तरह साफ कर लें ताकि उनमें कोई छोटे कीड़े या धूल न रहे। सकीना के फूलों में प्राकृतिक रूप से थोड़ी कड़वाहट या कसैलापन होता है। इसे कम करने के लिए फूलों को नमक वाले पानी में थोड़ी देर उबालकर वह पानी फेंक देना चाहिए। सकिना के फूलों की तासीर ठंडी होती है। बसंत और गर्मी के मौसम में इसके सेवन से शरीर की आंतरिक गर्मी शांत होती है और यह मन को प्रसन्न रखने वाला माना जाता है।

प्रस्तुति: डॉ० शोभा रावत
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय,
कल्जीखाल, पौड़ी गढ़वाल

आईएएस बनने से पहले ये सात बातें हैं जरूरी

"आईएएस का सपना केवल इच्छा से नहीं, बल्कि स्पष्ट निर्णय, ठोस योजना और ईमानदार आत्म–मूल्यांकन से पूरा होता है।" भारत की सिविल सेवा परीक्षा, जिसे Union Public Service Commission आयोजित करता है, देश की सबसे प्रतिष्ठित और प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं में गिनी जाती है। हर वर्ष लाखों युवा इस परीक्षा की तैयारी शुरू करते हैं, परन्तु अंतिम चयन केवल उन्हीं का होता है जो न केवल ज्ञान के स्तर पर सक्षम होते हैं, बल्कि मानसिक रूप से दृढ़, रणनीतिक रूप से स्पष्ट और जीवन–प्रबंधन के स्तर पर संतुलित होते हैं। आज के समय में आईएएस बनना केवल एक career choice नहीं है, बल्कि यह एक दीर्घकालिक, अनुशासित और चुनौतीपूर्ण जीवन–यात्रा है। इस यात्रा में आपको अपने जीवन के कई महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे वित्त, समय, मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक समर्थन को संतुलित करना होता है। दुर्भाग्य से, अनेक अभ्यर्थी बिना इन पहलुओं को समझे तैयारी शुरू कर देते हैं और बीच में ही संघर्ष कर बैठते हैं। यह लेख उन विद्यार्थियों के लिए है जो अभी इस निर्णय के मोड़ पर खड़े हैं। यहाँ वे सात मूलभूत पहलू प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिन्हें समझे बिना इस यात्रा में प्रवेश करना एक गंभीर रणनीतिक त्रुटि हो सकती है।

आईएएस का निर्णय : भावनात्मक नहीं, व्यावहारिक होना चाहिए

आईएएस बनने का सपना स्वाभाविक रूप से आकर्षक है। इसमें प्रतिष्ठा, अधिकार, सामाजिक प्रभाव और स्थिरता का संगम दिखाई देता है, किन्तु यह निर्णय केवल आकर्षण, सामाजिक दबाव या दूसरों की सफलता से प्रेरित होकर नहीं लिया जाना चाहिए। यह एक ऐसा निर्णय है जो आपके जीवन के कई वर्षों की दिशा निर्धारित करता है। सही दृष्टिकोण यही है कि आईएएस का निर्णय भावनाओं के आधार पर नहीं, बल्कि जीवन–प्रबंधन (life management) के परिप्रेक्ष्य में लिया जाए।

1. आर्थिक योजना : तैयारी से पहले वित्तीय स्पष्टता

आईएएस की तैयारी सामान्यतः एक से तीन वर्षों तक चलती है। इस अवधि में अधिकांश अभ्यर्थी पूर्णकालिक अध्ययन करते हैं, जिससे आय के स्रोत सीमित हो जाते हैं। ऐसे में आर्थिक दबाव तैयारी को प्रभावित कर सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि अभ्यर्थी पहले ही यह स्पष्ट करें कि वे अपनी तैयारी के दौरान वित्तीय रूप से कैसे संतुलन बनाएंगे। क्या उनके पास इतनी बचत है कि वे बिना आय के कुछ समय तक चल सकें ? क्या परिवार उनका सहयोग कर सकता है ? क्या वे कोचिंग, पुस्तकें और अन्य आवश्यक खर्च वहन कर सकते हैं ? एक साधारण financial planning - जिसमें मासिक खर्च, आवश्यक संसाधन और आपातकालीन निधि शामिल हो। तैयारी को स्थिर और तनावमुक्त बनाती है। बिना आर्थिक योजना के तैयारी शुरू करना अक्सर अनिश्चितता और मानसिक दबाव को जन्म देता है।

2. समय की प्रतिबद्धता : यह एक दीर्घकालिक निवेश है

आईएएस की तैयारी कोई त्वरित परिणाम देने वाला प्रयास नहीं है। यह एक दीर्घकालिक बौद्धिक निवेश है, जिसमें निरंतरता और धैर्य की आवश्यकता होती है। औसतन, एक अभ्यर्थी को प्रतिदिन 6 से 8 घंटे गंभीर अध्ययन करना पड़ता है, और यह क्रम महीनों नहीं बल्कि वर्षों तक चलता है। यहाँ केवल पढ़ने का समय नहीं, बल्कि ध्यानपूर्वक और गुणवत्तापूर्ण अध्ययन महत्वपूर्ण होता है। अभ्यर्थी को स्वयं से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि क्या वह इतनी लंबी अवधि तक अनुशासित दिनचर्या बनाए रख सकता है। क्या वह बार–बार की असफलताओं के बावजूद प्रयास जारी रख सकता है ? क्या वह अपने समय का प्रबंधन इस स्तर पर कर सकता है कि पढ़ाई उसकी प्राथमिकता बन जाए ? आईएएस की तैयारी को एक मैराथन के रूप में देखना चाहिए, जहाँ निरंतर चलने वाला ही अंततः लक्ष्य तक पहुँचता है।

3. सही उम्र और जीवनशैली की संगति

आईएएस की तैयारी के लिए कोई निश्चित आयु सीमा तो है, परन्तु तैयारी की उपयुक्तता केवल आयु से नहीं, बल्कि जीवनशैली और मानसिक परिपक्वता से निर्धारित होती है। युवा अवस्था में ऊर्जा अधिक होती है, लेकिन अनुभव सीमित हो

सकता है। वहीं, अधिक आयु में अनुभव तो होता है, परन्तु जिम्मेदारियाँ भी बढ़ जाती हैं। ऐसे में अभ्यर्थी को यह देखना चाहिए कि उसकी वर्तमान जीवनशैली इस तैयारी के अनुकूल है या नहीं। क्या वह अपनी सामाजिक गतिविधियों को सीमित कर सकता है ? क्या वह नियमित और अनुशासित दिनचर्या में स्वयं को ढाल सकता है ? क्या वह मानसिक दबाव और असफलताओं को संतुलित ढंग से संभाल सकता है ? आईएएस की तैयारी केवल विषय–वस्तु बदलने का नहीं, बल्कि जीवनशैली को पुनर्गठित करने का नाम है।

4. मानसिक दृढ़ता और निरंतरता

आईएएस की तैयारी का सबसे महत्वपूर्ण पहलू मानसिक दृढ़ता है। यह परीक्षा केवल ज्ञान की नहीं, बल्कि धैर्य, आत्म–नियंत्रण और मानसिक स्थिरता की भी परीक्षा है। तैयारी के दौरान अभ्यर्थी को कई बार असफलता का सामना करना पड़ सकता है– चाहे वह प्रारंभिक परीक्षा में हो, मुख्य परीक्षा में या साक्षात्कार में। इसके साथ ही, दूसरों से तुलना और आत्म–संदेह भी मनोबल को प्रभावित करते हैं। ऐसे में यह आवश्यक है कि अभ्यर्थी असफलता को एक सीख के रूप में देखे, न कि अंतिम परिणाम के रूप में। छोटे–छोटे लक्ष्यों के माध्यम से आगे बढ़ना, स्वयं पर विश्वास बनाए रखना और निरंतर प्रयास करना ही मानसिक शक्ति का आधार है। सफलता उन्हीं को मिलती है जो कठिन परिस्थितियों में भी अपने प्रयास को जारी रखते हैं।

5. परिवार और सामाजिक सहयोग

आईएएस की तैयारी एक व्यक्तिगत प्रयास अवश्य है, लेकिन इसका प्रभाव पूरे परिवार पर पड़ता है। इसलिए परिवार का सहयोग इस यात्रा को सहज बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि परिवार का समर्थन प्राप्त हो, तो अभ्यर्थी मानसिक रूप से अधिक स्थिर रहता है। आर्थिक और भावनात्मक सहयोग उसे लंबे समय तक तैयारी में टिके रहने की शक्ति देता है। अभ्यर्थी को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसका निर्णय परिवार के साथ संवाद के आधार पर लिया गया हो। साथ ही, उसे सामाजिक दबाव और अपेक्षाओं को संतुलित ढंग से संभालने की क्षमता भी विकसित करनी चाहिए।

6. आत्म–मूल्यांकन : क्या आप वास्तव में तैयार हैं ?

आईएएस की तैयारी शुरू करने से पहले सबसे आवश्यक कदम है– ईमानदार आत्म–मूल्यांकन। यह समझना कि आपकी रुचि, क्षमता और लक्ष्य इस परीक्षा की मांगों के अनुरूप हैं या नहीं। अभ्यर्थी को यह देखना चाहिए कि क्या उसमें विश्लेषणात्मक सोच, लेखन क्षमता, धैर्य और निरंतरता जैसी विशेषताएँ हैं। क्या वह लंबे समय तक बिना तत्काल परिणाम के कार्य कर सकता है ? क्या उसकी रुचि वास्तव में प्रशासन और समाज सेवा में है ? आईएएस केवल एक नौकरी नहीं है। यह एक जिम्मेदारी है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि क्या आप इस जिम्मेदारी के लिए मानसिक और बौद्धिक रूप से तैयार हैं।

7. तैयारी का सही समय

अक्सर यह प्रश्न उठता है कि आईएएस की तैयारी कब शुरू की जाए। इसका उत्तर किसी एक समय में सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की परिस्थिति पर निर्भर करता है। यदि अभ्यर्थी अपनी पढ़ाई के अंतिम चरण में है या हाल ही में स्नातक हुआ है, तो यह समय तैयारी शुरू करने के लिए उपयुक्त हो सकता है। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है मानसिक और आर्थिक तैयारी। तैयारी तब शुरू करनी चाहिए जब आप इसके लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध हों। केवल प्रेरणा के आधार पर शुरू की गई तैयारी अक्सर बीच में ही रुक जाती है, जबकि स्पष्ट संकल्प के साथ शुरू की गई यात्रा ही सफलता तक पहुँचती है।

सामान्य गलतियाँ जिनसे बचना चाहिए !

अनेक अभ्यर्थी बिना पर्याप्त सोच–विचार के केवल दूसरों को देखकर तैयारी शुरू कर देते हैं। कुछ बिना योजना के नौकरी छोड़ देते हैं, तो कुछ अपनी आर्थिक स्थिति को नजरअंदाज कर देते हैं। कई लोग वैकल्पिक योजना (backup plan) भी नहीं बनाते। इन गलतियों से बचना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि गलत निर्णय आपकी पूरी मेहनत को प्रभावित कर सकता है।

निष्कर्षः आईएएस केवल परीक्षा नहीं, जीवन की दिशा है

आईएएस बनने का निर्णय केवल एक career का चयन नहीं है, बल्कि यह आपके जीवन की दिशा निर्धारित करता है। यदि आप आर्थिक रूप से तैयार हैं, समय देने के लिए प्रतिबद्ध हैं, मानसिक रूप से मजबूत हैं और आपका उद्देश्य स्पष्ट है, तो यह यात्रा आपके लिए सार्थक सिद्ध हो सकती है। अन्यथा, इस निर्णय को पुनः विचार करना भी एक समझदारी भरा कदम हो सकता है।

प्रस्तुति- डॉ.अफरोज इकबाल,
एसोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
डोईवाला, देहरादून

(लेखक एक अनुभवी शिक्षाविद्, करियर मेंटर और मोटिवेशनल वक्ता हैं, जो वर्षों से छात्रों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए मार्गदर्शन प्रदान कर रहे हैं। उनकी रणनीतियाँ व्यावहारिक, सुव्यवस्थित और परिणामोन्मुखी हैं, जो अभ्यर्थियों को सही दिशा में आगे बढ़ने में सहायक होती हैं। उनका यूट्यूब चैनल भी संचालित है।)

माया क्षेत्र : समय और प्रवाह

हरिद्वार-ऋषिकेश की विरासत पर प्रदर्शनी

दून यूनिवर्सिटी के पीपल लैब, स्कूल ऑफ डिजाइन ने दो मई को अपनी प्रदर्शनी 'माया क्षेत्र समय वार्ता' का सफलतापूर्वक उद्घाटन किया। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन दून विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो. सुरेखा डंगवाल, दिल्ली विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार डॉ. विकास गुप्ता और दिल्ली विश्वविद्यालय के उप–रजिस्ट्रार (वित्त) शरद कुमार संत ने किया। यह आयोजन संस्थान के लिए एक महत्वपूर्ण शैक्षणिक और सांस्कृतिक अवसर था।

डॉ. धृति धौंडियाल और सुकल्प डबराल के मार्गदर्शन में तथा स्कूल ऑफ डिजाइन के 2024 बैच के सहयोग से तैयार की गई इस प्रदर्शनी में हरिद्वार–ऋषिकेश क्षेत्र के समृद्ध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को दर्शाया गया है। इस क्षेत्र को शास्त्रों में 'माया क्षेत्र' के नाम से जाना जाता है। 'समय वार्ता' (समय के साथ संवाद) की अवधारणा पर आधारित इस प्रदर्शनी में सोच–समझकर तैयार की गई दृश्य और स्थानिक व्याख्याओं के माध्यम से इस क्षेत्र के क्रमिक विकास की एक बहुआयामी गाथा प्रस्तुत की गई। इस प्रदर्शनी में क्षेत्र का एक विस्तृत कालक्रम (टाइमलाइन) प्रदर्शित किया गया, जिसके साथ–साथ विभिन्न प्रकार की आभासी प्रतिकृतियाँ और संवादात्मक कलाकृतियाँ (Interactive installations) भी शामिल थीं। आगंतुकों ने ऐसी कलाकृतियों के साथ जुड़कर आनंद लिया, जिन्होंने सांस्कृतिक गाथाओं को मनोरंजक और जीवंत अनुभवों में बदल दिया।

इनमें हरिद्वार की ऐतिहासिक प्रतिमाओं से प्रेरित शतरंज के सेट, तथा निर्मित और जीवंत विरासत को खेल के रूप में प्रस्तुत करने वाली संवादात्मक प्रणालियाँ शामिल थीं। डिजाइन, शोध और कहानी–कथन के मेल से तैयार की गई इस प्रदर्शनी का उद्देश्य विरासत को अधिक सुलभ और आकर्षक बनाना था, विशेष रूप से युवा दर्शकों के लिए।

इस आयोजन में भारी संख्या में लोग उमड़े, जिसमें शैक्षणिक, रचनात्मक और स्थानीय समुदायों के बड़ी संख्या में आगंतुक शामिल थे। प्रदर्शनी को इसके अभिनव दृष्टिकोण, गहन शोध और आकर्षक प्रस्तुति के लिए व्यापक सराहना मिली।

प्रस्तुति–प्रो.एच.सी. पुरोहित
समन्वयक, सेंटर फॉर हिन्दू स्टडीज
दून विश्व विद्यालय, देहरादून
(उत्तराखण्ड)